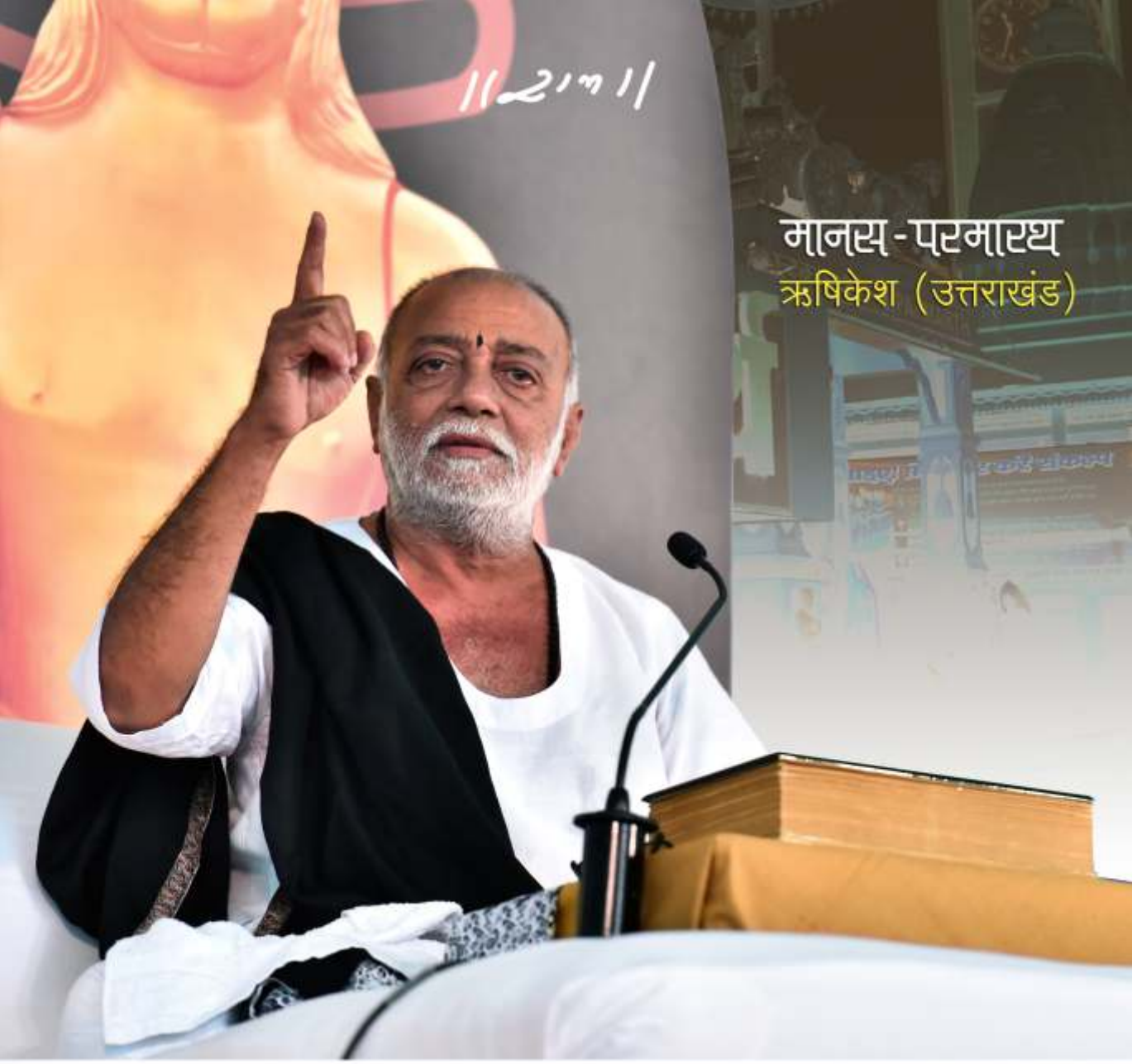

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

राम ब्रह्म परमारथ रूपा । अबिगत अलख अनादि अनूपा ।।
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु । कोउ न राम सम जान जथारथु ।।

।। रामकथा ।।

मानस–परमारथ

मोरारिबापू

ऋषिकेश (उत्तराखंड)

दिनांक : १३-०६-२०१५ से २१-०६-२०१५

कथा–क्रमांक : ७७८

प्रकाशन :

जुलाई, २०१६

प्रकाशक

श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,

तलगाजरडा (गुजरात)

www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट

© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक

नीतिन वडगामा

nitin.vadgama@yahoo.com

राम–कथा पुस्तक प्राप्ति

सम्पर्क–सूत्र :

ramkatha9@yahoo.com

ग्राफिक्स

स्वर ऍनिम्स

प्रेम–पियाला

ऋषिकेश (उत्तराखंड) की पावन भूमि में दिनांक १३–६–२०१५ से २१–६–२०१५ दरमियान मोरारिबापू की रामकथा सम्पन्न हुई। 'परमार्थ निकेतन' के पावन परिसर में हुई इस कथा में बापू ने 'मानस–परमारथ' विषय पर अपना दर्शन प्रकट किया। 'मानस' में प्रयुक्त 'परमारथ' शब्द की तुलसीजी कथित व्याख्या का बापू ने निजी ढंग से अर्थघटन किया।

'परमारथ का मूल प्रेम है। प्रेमरूपी मूल का फूल परमारथ है।' ऐसे सूत्रात्मक निवेदन के साथ बापू ने ऐसा सूत्रपात भी किया कि 'परमारथ है सत्य का विस्तार, परमारथ है प्रेम का विस्तार और परमारथ है करुणा का विस्तार।' विभिन्न अर्थसंदर्भ में 'मानस' में आते रहते परमारथ, परमारथी और परमारथवादी जैसे शब्दों का भी व्यासपीठ से विशद विवरण होता रहा।

'मानस' में गोस्वामीजी परमारथपथ, परमारथगाथा, परमारथवचन और परमारथवाद जैसी चार श्रेणी की बात करते हैं उसके संदर्भ में भी बापू ने अपने विचार प्रकट किये। बापू का कहना हुआ कि परमारथ एक पथ है; परमारथ पंथ या मार्ग है लेकिन यहां परमारथ कोई संप्रदाय नहीं है। क्योंकि 'पंथ' शब्द से संकीर्णता आ जाती है। कृष्णमूर्ति के शब्दों का विनियोग करते हुए बापू ने कहा कि परमारथ तो मार्गमुक्त मार्ग है।

जो राम को ब्रह्म कहते हैं, अनादि कहते हैं, अनंत मानते हैं, अखंड मानते हैं ये परमारथवादी है, ऐसे गोस्वामीजी के निवेदन से बापू ने परमारथवादी के विविध लक्षण रेखांकित किये एवम् ब्रह्मा, शिव, नारद, सनक आदि 'रामचरित मानस' में जो सात व्यक्ति परमारथवादी है उनका परिचय दिया। साथ ही वशिष्ठजी रघुकुल को शिबि, दधीचि, हरिश्चंद्र, रंतिदेव और बलिराजा की जो परमारथगाथा सुनाते थे उसका जिक्र भी किया। विवेक से, वैराग से, ज्ञान से और प्रेम से निकले लक्ष्मणजी के परमारथवचन का भी बापू ने 'लक्ष्मणगीता' के परिप्रेक्ष्य में स्मरण किया।

ऋषिकेश की पुनित–पावन भूमि पर प्रवाहित हुई मोरारिबापू की 'मानस–परमारथ' कथा–गंगा में निमज्जन कर कथा के श्रावक भाई–बहन कृतार्थ हुए।

– नीतिन वडगामा

सद्ग्रंथ द्वारा ग्रंथियां छूट जाय तो समझ दूर नहीं

मानस-परमारथ : १

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा।।
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु।।

बाप, माँ गंगा की कृपा से इस पावन भूमि में मेरी व्यासपीठ को अवसर प्राप्त हुआ उसकी सबसे पहले मैं प्रसन्नता व्यक्त करता हूं और इस रामकथा के मंगल प्रारंभे जिसके हाथ से दीप प्रज्वलित हुआ और जिसकी आशीर्वादक उपस्थिति यहां है ऐसे परम पूज्य वितरागी स्वामी महामंडलेश्वरजी महाराज के चरणों में मेरा प्रणाम। अन्य सभी पूजनीय संतगण, पूजनीय साध्वीजी, आदरणीय साहब और उत्तराखंड राज्य सरकार के प्रतिनिधि पधारे जिन्होंने गंगा के घाट पर 'रामचरित मानस' का आदर किया राज्य सरकार की ओर से और आप सभी मेरे श्रावक भाई-बहन। सभी को माँ गंगा के तट पर व्यासपीठ से मेरा प्रणाम।

मैं आपसे बता दूं कि मेरे मन में ये बात पहले से तय थी कि जब भी 'परमार्थ निकेतन' में कथा करूंगा तब 'मानस-परमारथ' करूंगा। मेरे मन में पहले से ब्ल्यू प्रिन्ट थी। मैंने सोचा, मैं 'मानस-परमारथ' पर आपसे संवाद करूंगा 'मानस' के आधार पर और आज भगवद्कृपा से अभी-अभी स्मरण किया गया कि पूज्य महामंडलेश्वरजी महाराज को निर्वाण हुए पचास साल हुए हैं और रास्ते में हमें खबर मिली; हमारे मथुरावाले स्नेही है, चिठ्ठी दी कि बापू, आज स्वामी रामसुखदासजी महाराज का निर्वाण दिन है।

जब परमात्मा योग बनाता है तब कैसे-कैसे सुंदर संजोग इकठ्ठे हो जाते हैं! उत्तराखंड का हादसा हुआ उसको भी दो साल पूरे होने को है। और पूज्यश्री ने कई बातें इस रामकथा के साथ जोड़ दी है। पूरा प्रारूप मुझे रास्ते में बता रहे थे। बड़ी पारमार्थिक योजनायें है आपकी। मैं प्रणाम करूं कि आप ऐसा सोचते रहते हैं, करते रहते हैं। और सबसे बड़ी बात तो ये कि विश्वयोग दिन जो इक्कीस तारीख को है, आपको शायद न्यूयोर्क जाना था उसको भी आपने ये कर दिया कि नहीं, अब तो कथा है इसलिए मैं वो टालूं। और दूसरे दिन आपने मुझे बताया। इस कथा का केन्द्रीय विषय होगा 'मानस-परमारथ।' तुलसीदासजी अपभ्रंश में बातें करते हैं। उनकी भाषा देहाती है, ग्राम्यगिरा है। इसलिए वो 'परमार्थ' नहीं बोलेंगे, 'परमारथ' बोलेंगे। यद्यपि 'रामचरित मानस' में 'परमारथ' शब्द कई बार आया है। 'परमारथु' वो भी आया है। 'परमारथबादी' ये भी शब्द आया है। 'परमारथी' ये भी शब्द आया है। 'सुन्दरकांड' को छोड़कर प्रत्येक कांड में तुलसीदासजी ने परमारथ का पवित्र स्मरण किया है।

'अयोध्याकांड' से दोनों पंक्तियां उठाई है। कुल मिलाकर पच्चीस के आसपास 'परमारथ' शब्द का प्रयोग 'मानस' में हुआ है। बिलग-बिलग संदर्भ में परमारथ की एक बिलग व्याख्या तुलसीदासजी प्रस्तुत करते हैं। मुझे

लगता है, बिलकुल प्रासंगिक है; सदैव प्रासंगिक रहेगी। क्योंकि तुलसी मेरे लिए सदैव ताजा-तरोजे हैं। रोज नूतन दर्शन तुलसी प्रदान करते रहते हैं। ऐसा ये शास्त्र, उसके बारे में हम संतों की कृपा से सद्गुरु भगवान की कृपा से जो कुछ पाया-सुना, हम और आप मिलकर गायेंगे। तो, ये पंक्तियों का गायन करें हम -

राम ब्रह्म परमारथ रूपा।
अबिगत अलख अनादि अनूपा।
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु।
कोउ न राम सम जान जथारथु।।

किसनबिहारी 'नूर' का शे'र है -

देना है तो मेरी निगाह को ऐसी रसाई दे।
मैं देखूं आयना और मुझको तू दिखाई दे।

रसाई मानी ऐसी ऊंचाई देना।

मुज़रीम है सोच-सोच गुनहगार है सांस-सांस।
यहां सफ़ाई दे तो भी कितनी सफ़ाई दे।

प्रत्येक व्यक्ति की सोच ज़हरीली हो जा रही है। इवन सोचता है आदमी, विष उगलता है! हम सफाई दे तो भी कितनी सफाई दे! क्योंकि मुज़रीम है सोच-सोच; परमात्मा, देना है तो मेरी निगाह को ऐसी रसाई दे कि मैं देखूं आयना और मुझे तू दिखाई दे। ये सराहना नहीं है, वैश्विक योग दिन मनाया जा रहा है इनमें इनका (रामदेवजी का) बड़ा योगदान है। यद्यपि मैं बहुत जिम्मेवारी के साथ बोल रहा हूं, योग तो आदि से चल रहा है। योग-विज्ञान। और योग की बातें करनेवाले कई साधु-संत मनीषियों ने अपना-अपना पूरा जीवन दिया। ये प्रवाह योग का चलता रहा, चलता रहा। लेकिन मेरा व्यक्तिगत विचार, कोई माने ना माने, योग को यदि कोई मैदान में लाया, जन-जन तक यदि योग को पहुंचाया, इसका श्रेय एक फ़कीर को जाता है। सराहना करने का कोई कारण तो है नहीं। ये गंगा योग की बहती रही, लेकिन इतनी विशालता!

मैं तो दंग रह गया! उज्जैन में इतना ऊंचा मंच था। मैं पहली बार गया और इतने लोग, लाख-सवा लाख लोग बैठे थे। और फिर हमारे आदरणीय राष्ट्रभक्त प्रधानमंत्री जिन्होंने अपनी यात्रा के दौरान ये बात रखी और करीब-करीब एक सौ सतत्तर देशों को कबूल करना पड़ा, संमति देनी पड़ी और इतनी बड़ी सर्वसंमति से योग को वैश्विकदिन के रूप में यूनो ने प्रस्थापना की। यूनो ने वंदना किया, स्वीकार किया। स्वीकार तो चांद-सितारों ने कर लिया था ओलरेडी। पंचमहाभूतों ने कर लिया था। योग की वंदना की इसलिए यूनो को भी धन्यवाद। हमारे आदरणीय प्रधानमंत्री महोदय सा'ब को भी बहुत-बहुत धन्यवाद। और मेरे निजी विचार में आपने, सभी संतों ने योग के बारे में कितना योगदान दिया! मैं तो पहले शब्द सुनता था कि ये 'योगी' है, लेकिन योग क्या ये भगवान जाने! योगी है, सुनता था तो डर भी लगता था! अरे योगी! लेकिन योग को जगत के जन-जन के बीच में स्थापित किया। आप सब संत कितने परमार्थ के लिए विश्व में परिभ्रमण कर रहे हैं!

तो, 'मानस-परमारथ।' गोस्वामीजी कहते हैं, इन दो पंक्तियों का मेरी व्यासपीठ ने जो आश्रय लिया है उसके बारे में मैं इतना ही कहूं कि राम ब्रह्म है, परमारथ रूप है। गोस्वामीजी कहते हैं, अबिगत! कोई माय का लाल उसकी बिगत नहीं दे पाता! 'नेति नेति'; 'अलख', कोई उसको लख नहीं पाता। वो अनादि है। तुलसी की एक पंक्ति है -

आदि अंत को जासु ना पावा।
मति अनुरूप निगम अस जाना।

सबने अनुमान लगाया है बाकी न कोई आदि पा सका न कोई अंत पा सका। अनुपमा है। राम निरुपमेय है। राम समान राम। राम के जैसा कौन? कोई उपमा नहीं दी जा सकती। दूसरी पंक्ति का सीधा-सादा अर्थ है नीति, प्रीति, परमार्थ और स्वार्थ उसको इस विश्व में राम के समान यथार्थ कोई नहीं जानता था। गोस्वामीजी 'विनयपत्रिका' में कहते हैं -

जानत प्रीति रीत रघुराई।

प्रीतितत्त्व क्या है? राम के समान यथार्थ कोई नहीं जानता। नीति तत्त्व क्या है? स्वार्थ क्या है और परमारथ क्या है? राम के समान यथार्थ कोई नहीं जान पाता। इन दो पंक्तियों का मेरी व्यासपीठ गुरुकृपा से संतों के आशीर्वाद से आश्रय ले रही है। तुलसीदास ने बिलग-बिलग स्थान पर संकेत किया है कि परमारथ मानी क्या? 'परमारथ' बड़ा पावन शब्द है। उसकी चर्चा हम और आप संवाद के रूप में करते रहेंगे।

और मन खुला है, दिल खुला है, ग्रंथ के द्वारा यदि हमारी आंतर्ग्रंथियां छूट चुकी है तो उपलब्धि दूर नहीं; समझ दूर नहीं। और कुछ बातों के लिए समय नहीं चाहिए, समझ चाहिए। सद्ग्रंथ के द्वारा ग्रंथियां छूट जाय तो समझ दूर नहीं। जिसको समझ प्राप्त करनी है वो तो कहीं से भी प्राप्त कर लेता है। और जिसको समझ प्राप्त करनी ही नहीं उसको स्वयं परमात्मा समझ दे तो भी वो नहीं कबूल करेगा!

ओशो के एक मेगझिन में लिखा था। उसमें संत जुनेद की एक बनी घटना लिखी थी। एक महान संत, जुनेद जिसका नाम। वो कोई नगर में जाता है और इतनी देर हो चुकी थी कि धर्मशालायें बंद हो चुकी थी। किसी का द्वार खुला नहीं था कि उसको रहने को मिले। तो बहुत देर रात दो बजे के बाद करीब एक आदमी उसको मिल जाता है। ये महात्मा थे। ये आदमी से पूछता है, मुझे एक रात रहना है यहां, लेकिन कोई द्वार खुला नहीं। मैं अनजान व्यक्ति हूं, किसके घर रहूं? उस आदमी ने कहा, मेरा घर है आप रहो तो; और एक दिन क्या? जितना रहना चाहो रहो, लेकिन जान लो, मैं चोर हूं। धंधा करने निकला हूं। आपको इज्जत की चिंता हो, मुश्किल हो, कोई कहे कि महात्मा होकर चोर के घर रहा! तो कृपया कष्ट मत करना, बाकी घर खुला है। ये बनी घटना है। तो, महात्मा को घर बता दिया। महात्मा वहां जाकर विश्राम करते हैं। पांच बजे चोर आया। महात्मा ने पूछा, आप चोरी करने गये थे तो क्या मिला? बोले, कुछ मिला नहीं, कोई बात नहीं। कल फिर देखेंगे। जुनेद उसके घर एक महिना रहा और रोज ये रात को दो बजे चोरी करने निकलता है। एक महिने तक उसको कोई चोरी ही नहीं मिली! निष्फल होकर आता है, लेकिन ऐसा ही ताज़ा-तरोज़ा। तो, महात्मा ने पूछा कि एक महिने से तुझे कोई चोरी नहीं मिली फिर भी तू इतना फ्रेश कैसे रह सकता है? बोले, मेरा जीवन ही यही है। आज नहीं तो कल मिलेगा। और जुनेद कहता है, मैंने तय कर लिया कि मैं परमात्मा की चोरी करने निकला हूं और एक साल अनुष्ठान किया, नहीं मिला; उदास हो गया और दूसरा अनुष्ठान किया। परमात्मा की कोई झलक नहीं पाई; डिप्रेस हो गया। चोर मेरा गुरु बन गया। चोर यदि निराश नहीं होता तो मुझको तो ब्रह्म को पाना है, निराश क्यों? तो, उसने कहा, मेरे कई गुरु है, इनमें सबसे पहले कोई गुरु है तो ये चोर है। जिसको समझ लेनी है तो चोर से भी मिल जाती है।

तो, नवदिवसीय परमारथ-संवाद करेंगे। उपदेश तो देते नहीं। पहले कहता था संदेश, लेकिन अब तो ये भी नहीं। ये काम भी छोड़ दिया। न उपदेश है, न आदेश है, न संदेश है; न कोई उद्देश है मेरे पास। हमारे गुजराती के वरिष्ठ साहित्यकार राजेन्द्र शाह, एक गुजराती कवि कहते हैं -

निरुद्देशे निरुद्देशे
संसारे मुज मुग्ध भ्रमण पांशु मलिन वेशे.

मेरे जीवन का परिभ्रमण केवल निरुद्देश है। कुछ पाना नहीं है। बस, आये हैं, मौज करके निकल जाये। तो, मैं आपसे संवाद करूंगा। मेरे पास जो शास्त्र है वो संवाद का शास्त्र है। यद्यपि ये संवाद बुद्धिपूर्वक विचार करके रचा गया, लेकिन है संवाद। संवाद हो राष्ट्र में; पड़ोशी-पड़ोशी में; वर्ग-वर्ग में। तुलसीदासजी ने कहा है -

यह सुभ संभु उमा संबादा।
सुख संपादन समन बिषादा।।

ये उमा और शिव का संवाद है और गोस्वामीजी खास शब्द योजते हैं, ये शुभ संवाद है। हमारे यहां दो शब्द है बाप, 'लाभ-शुभ।' मैं इस तरह सोचता हूं संतों की कृपा से इसलिए आप से शेर कर रहा हूं कि सभी लाभ अच्छे नहीं होते, लेकिन छोटा-सा शुभ कायम अच्छा होता है। लाभ तो कई लोगों को मिलता है। कई प्रकार के लोग लाभ लेते हैं! लेकिन 'शुभ' कोई बहुत ऊंचाई से आया हुआ शब्द है।

स्वर्ग क्या है, हमें पता नहीं। मुझे तो स्वर्ग सदा कथा में लगता है। हमारे पूज्य मुनिजी को पूछो, उसको राष्ट्रकल्याण में स्वर्ग लगता होगा। इसीलिए विविध योजना में एक फकीर लगा रहता है। हमारे बाबा (रामदेवजी) को पूछो तो उसका स्वर्ग है योगा। स्वर्ग क्या, मुझे खबर नहीं और मुझे तो यदि परमात्मा दे तो मैं लेनेवाला नहीं, क्योंकि मैंने सुना है कि स्वर्ग में सब कुछ है, लेकिन हरिकथा नहीं है। और कथा के बिना वहां जाकर क्या करे? स्वर्ग तो आज 'परमार्थ निकेतन' में है। इतने संतों की शरीरी-अशरीरी चेतनायें घूमती है। समझ हो तो मुलाकात हो सकती है। तरंगें महसूस कर सकता है साधक, यदि गुरु कृपा हो जाय। तो, शुभ की बड़ी महिमा है। शुभ की छाया में लाभ हो तो स्वागत है। लेकिन हम तो शुभ लाभ की छाया में खोजते हैं! तुलसीजी सूत्रपात करते हैं -

यह सुभ संभु उमा संबादा।
सुख संपादन समन विषादा।।

और हमारे शास्त्र करीब-करीब संवाद में तो है।

तो, हम नव दिन गुरुकृपा से, शास्त्रकृपा से संवाद करेंगे। न कोई उपदेश, न कोई उद्देश और आदेश कुछ नहीं। बस, हम संवाद करेंगे। केन्द्र में 'रामचरित मानस' होगा। हे प्रभु, मेरा तो जो भी कदम है वो तेरी निगाह में है। 'मानस' की डगर पर यदि हम चले। 'मानस' अद्‌भुत शास्त्र है। तो, 'मानस' में करीब-करीब पच्चीस बार 'परमारथ' शब्द आया है बिलग-बिलग संदर्भ में।

पंडितजी महाराज का एक वक्तव्य मैंने पढ़ा था; मैं स्मरण करूं स्वामी रामकिंकरजी महाराज का, आपने कहा था कि 'मानस' के कवि शिव है। वाल्मीकिजी आदि कवि है, तो शंकर अनादि कवि है। तो, शिवजी ने 'रामचरित मानस' की रचना की आप जानते हैं। सात सोपान रचे। 'बालकांड', 'अयोध्याकांड', 'अरण्यकांड', 'किष्किन्धाकांड', 'सुन्दरकांड', 'लंकाकांड', 'उत्तरकांड।' सात सोपान जो सुखसंपादन है, विषाद का शमन करनेवाला है। सात सोपान में संवाद भरा है। चार संवाद है। शिव-पार्वती के बीच संवाद; याज्ञवल्क्य-भरद्वाजजी के बीच संवाद। बाबा भुशुंडि और गरुड के बीच और तुलसी और संतगण अथवा तो तुलसी का मन इनके बीच जो संवाद रचा गया। चार संवाद की कथा सात सोपान में बांटी गई है।

'बालकांड' के आरंभ में गोस्वामीजी 'मानस' में सात मंत्र लिखते हैं। मंगलाचरण; हम मंगल उच्चारण तो करते हैं, लेकिन जिस मंगल आचरण करते उसका नाम मंगलाचरण। उच्चारण की महिमा तभी है जब आचरण मंगलमय हो। सात मंत्रों में गोस्वामीजी ने मंगलाचरण किया। शास्त्र का आरंभ संस्कृत में किया,

लेकिन उसके बाद कथा का सर्जन उसने भाषाबद्ध किया। भाषा में शास्त्र को उतारे -

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।
भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्।।

सबसे पहले वाणी की वंदना की। विनायक की वंदना की। शिव की और माँ भवानी की वंदना की। पीछे चार वंदना; आदिकवि वाल्मीकि और हनुमानजी और सीता-राम बीच में गुरुवंदना। सात मंत्रों में कुल नव वंदना है। वाणी, विनायक, शिव, पार्वती, हनुमानजी, वाल्मीकिजी, सीता-राम। बीच में गुरुवंदना। गुरु केन्द्र में है। तुलसी कुछ संकेत करना चाहते हैं। गुरु की निष्ठा गोस्वामीजी की अद्‌भुत रही। शास्त्र का हेतु समझाते हुए कह दिया -

स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा-
भाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति।

श्लोक को लोक तक पहुंचाना था गोस्वामीजी को इसलिए तुलसी तुरंत ग्राम्य भाषा में ऊतर आये और पांच सोरठें लिख दिए।

जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन।।
मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलिमल दहन।।
बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर।।

पांच सोरठें लिखें। जिसमें गणेश, सूर्य भगवान, भगवान शिव, माँ दुर्गा और विष्णु; पंचदेवों का स्मरण किया। पांच देवों की पूजा करने की हमारे जगद्‌गुरु भगवान शंकराचार्य ने जो बात की उसको उसने पहले प्रकरण में स्थापित किया। ये था तुलसी का संवाद। ये था तुलसी का सेतुबंध। उद्देश मानो तो उद्देश। सनातन धर्मावलंबीओं को पांच देवों की पूजा करनी चाहिए। गणेश, सूर्य, शिव, दुर्गा और भगवान विष्णु। मेरी व्यासपीठ कहती रहती है कि उसका एक सूक्ष्म रूप भी है। मान लो हम शायद हंमेश गणेशपूजा न कर सके तो गणेश है विवेक का देवता। सतसंग करते-करते हमारा विवेक बना रहे ये निरंतर गणेशपूजा है, क्योंकि सतसंग के बिना विवेक संभव नहीं।

बिनु सतसंग बिबेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।।

विवेकभान ये है गणेशउपासना। वो गणेशउपासना तो करनी ही चाहिए, लेकिन सूक्ष्म रूप विवेकभान। सूर्य की उपासना मानी प्रकाश में रहने का शिवसंकल्प ये है सूर्यउपासना। सूर्य नमस्कार की कितनी बड़ी महिमा है! प्रकाश की उपासना। देश के ऋषि ने यही मांगा कि हमें अंधेरे की ओर से उजाले की ओर ले जाय। ये है सूर्य की उपासना। विष्णु की उपासना मानी

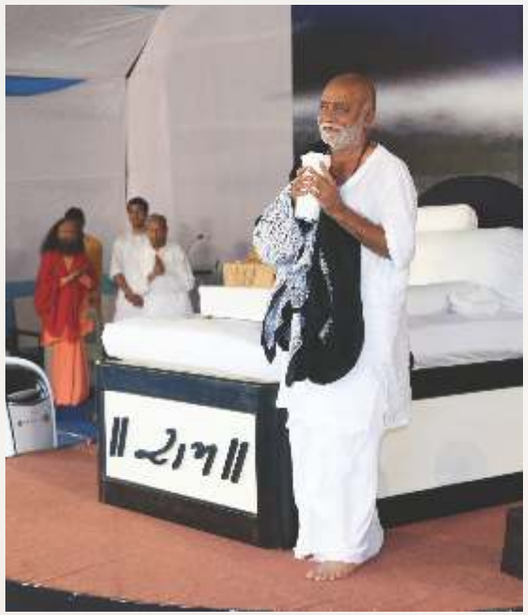

व्यापकता, औदार्य जो भारत का स्वभाव है। उदारता; दृष्टि का औदार्य; दिल का औदार्य। संकीर्णता नहीं। हमारी श्रद्धा, मौलिक श्रद्धा कभी टूटे ना ये गौरीपूजा और सबका मंगल हो ये शिवपूजा। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः।' ये जो भाव है ये निरंतर रुद्राभिषेक है।

पांच सोरठें लिखे उसके बाद 'बंदउ गुरुपद पदुम परागा।' तुलसीदासजी गुरु की वंदना करते हैं जो कृपासिंधु मनुष्य के रूप में मेरे लिए हरि है। जिसके वचन सूरज की किरन है, जो महामोह को नष्ट कर देता है। और चौपाई में जहां से शुरू होता है 'मानस' उसमें गुरुवंदना है, जिसको मेरी व्यासपीठ 'मानस-गुरुगीता' कहती है।

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।।
श्रीगुरु पद नख मनि गनजोती।
सुमिरत दिब्य दृष्टि हियं होती।
गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन।
नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन।।

तो बाप, पहले गुरुवंदना। गुरु पद रज से आंख को पवित्र करने का संकल्प और आंख पवित्र हो गई फिर किसकी निंदा करे? सारा जगत वंदनीय हो गया।

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

फिर पारिवारिक वंदना चलती है। माँ कौशल्या की, महाराज दशरथ की, जनक महाराज की, भरतजी की, शत्रुघ्नजी की, लखनलालजी की वंदना। और सीता-रामजी की वंदना। फिर सखाओं की वंदना। बीच में श्री हनुमानजी महाराज की वंदना तुलसी रखते हैं -

महाबीर बिनवउँ हनुमाना।
राम जासु जस आप बखाना।।

हनुमानजी प्राणतत्त्व है। हनुमानजी शिव के रूप में त्रिभुवन गुरु है। वानर के रूप में साक्षात् शंकर का अवतार है। ऐसे हनुमानजी की वंदना गोस्वामीजी ने की है।

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल अमंगल मूल-निकंदन।।
बंदउ राम लखन वैदेही।
ये तुलसी के परम सनेही।।

•

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं।।
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि।
प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।।

हनुमानजी का आश्रय समझ में आये तो करना। हनुमान प्राणतत्त्व है। पहले दिन की कथा हम सदैव हनुमंत-वंदना पर रोक देते हैं। तो, पहले दिन की कथा यहां रोक देता हूं।

मन खुला है, दिल खुला है, ग्रंथ के द्वारा यदि हमारी आंतर्ग्रंथियां छूट चुकी है तो उपलब्धि दूर नहीं; समझ दूर नहीं। और कुछ बातों के लिए समय नहीं चाहिए, समझ चाहिए। सद्ग्रंथ के द्वारा ग्रंथियां छूट जाय तो समझ दूर नहीं। जिसको समझ प्राप्त करनी है वो तो कहीं से भी प्राप्त कर लेता है। और जिसको समझ प्राप्त करनी ही नहीं उसको स्वयं परमात्मा समझ दे तो भी वो नहीं कबूल करेगा!

हरिनाम के बिना परमारथ का मारग मुश्किल है

मानस-परमारथ : २

'मानस-परमारथ', जो इस नवदिवसीय रामकथा का केन्द्रबिंदु है। जहां गंगाजी, यमुनाजी और सरस्वतीजी का पुनित संगम हुआ है ऐसी तीरथराज प्रयाग की पावन भूमि पर मुनि भरद्वाजजी के आश्रम में जरा प्रवेश करें। प्लीज़, आहिस्ता-आहिस्ता, धीरे-धीरे क्योंकि आश्रम है।

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा।
तिन्हहि राम पद अति अनुरागा।।

'रामचरित मानस' ज्ञानग्रंथ तो है ही। यहां आप गाने के लिए निमंत्रित है। यहां आप केवल-केवल कथा सुनने के लिए आये हैं। गाईये -

तापस सम दम दया निधाना।।
परमारथ पथ परम सुजाना।

गोस्वामीजी की एक अदा है कि किसी भी पात्र को 'मानस' में सादर प्रवेश कराते हैं। एक-दो पंक्ति में उसका पुनित परिचय करा देते हैं। कैसे है भरद्वाजजी? सबसे पहला लक्षण साधु का, महात्मा का, इस मुनि का, उसको राम के चरण में अतिशय अनुराग है।

रामनाम अवलंब बिनु परमारथ की आस।
बरषत बारिद बूंद गहि चाहत चढ़न अकास।

जिसको राम के चरण में प्रेम नहीं वो परमारथ पथिक नहीं। गोस्वामी कहते हैं, रामनाम के आधार बिना जो पथिक परमारथ की आश करता है वो तो बादल से गिरते हुए बुंद को पकड़कर आकाश में चढ़ने का असफल प्रयास करता है। परमारथ का आधार है रामप्रेम। परमारथ का आधार है रामनाम। और मेरा राम छोटा नहीं है। राम ब्रह्म है। इसलिए हरिनाम कह लो, शिवनाम कह लो, कृष्णनाम कह लो, दुर्गानाम कह लो, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। बहुत से लक्षणों से भरे है भरद्वाज। लेकिन उद्घाटक सद्गुण है, जिनको राम के चरणों में अत्यंत प्रेम है। प्रश्न ये है कि प्रेम चेहरे पे करे? प्रेम किसी के वरद या शुद्ध हस्त पर करे? प्रेम किसी की महोब्बतभरी आंखों से करे? प्रेम किसी के दिल से करे? भक्तिमारग की राय क्या है? प्रेम का स्थान क्या? मेरे गोस्वामीजी दो-टूक कहते हैं, सच्चे प्रेम का स्थान है राम-पद।

हमने जब भी प्रेम मांगा, किसी बुद्धपुरुष के चरणों में प्यार मांगा। हृदय की ओर गया प्रेम धड़कता रहता है, धबकता रहता है। शायद गति ना कर भी पाये। आंखों में रहा प्रेम ताकता रहता है, हो सकता है। हाथ से रहा प्रेम

हाथ से छूट जाय तब निराशा भी दे सकता है। लेकिन किसी बुद्धपुरुष या तो परम के चरणों में रही प्रेमभक्ति सदैव व्यक्ति को निरंतर प्रवाहित करती है, गतिशील करती है; जिसको देवर्षि नारद ने कहा, 'प्रतिक्षण वर्धमानम्।' मेरे गोस्वामीजी कहते हैं, 'छन छन नव अनुराग।'

तो बाप, ये गंगा के तट की पवित्र भूमि, ऋषि-मुनि की भूमि पर हम भगवद्कृपा से बैठे हैं। गाने और सुनने के लिए हम आये हैं। लगता है नव दिन में कुछ घट सकता है; कुछ हो सकता है। कुछ ना हो तो भी चिंता नहीं, लेकिन हम है वो ही तो बने रह सकते हैं। जो हम है, जो हमारी निजता है।

'सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात्।।'

ऐसा कहकर नारद ने सूत्र दिया कि प्रेम वो है जो कामना को नष्ट कर दे। जो माया को मारनी ना पड़े। कबीर सा'ब कहते हैं, पक्का फल होते ही अपनेआप गिर जाते हैं, वैसे आदमी माया से अपनेआप बाहर आ जाता है। मुख देखना आदि खतरा है। तुलसी ने संतों के मुख देखने की अपील भी की है -

मुख दीखत पातक हरै, परसत कर्म बिलाहिं।
बचन सुनत मन मोहगत पूरब भाग मिलाहिं।।

जिसका मुख देखने से पाप कट जाय। कोई परमार्थी व्यक्ति के चेहरे की बातें है। लेकिन गुजराती में ऐसा लिखा है -

मुखडानी माया लागी रे मोहन प्यारा।
मुखडुं में जोयुं तारुं, सारुं जग लाग्युं खारुं।

लेकिन ये कृष्ण का चेहरा हो तो। ये कोई संत का चेहरा हो तो। अपनेआप छूटा। मुख देखना आदि-आदि में थोड़ा खतरा तो है। हर जगह ब्रह्मदर्शन हो जाय तो तो सवाल ही नहीं। हम बोल देते हैं, 'तुझमें रब दिखता है', लेकिन अल्लाह जाने, रब दिखता है कि क्या दिखता है!

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

तुलसी ने जो भरद्वाजजी में सद्लक्षणों का लिस्ट दिया उसमें मूल है रामप्रेम और फल है परमारथ। भरद्वाजजी रामचरण के अत्यंत अनुरागी है। वो तपस्वी है। 'तापस' शब्द 'मानस' का बड़ा प्यारा शब्द है। गोस्वामीजी ने कितनी बार इस शब्द का प्रयोग किया है!

तेहि अवसर एक तापसु आवा।
तेज पुंज लघुबयस सुहावा।।

ये तुलसी दर्शन है। शरफ़साहब, दिल्ही के शायर कहते थे -

महोब्बत का कानों में रस घोलते हैं।
ये ऊर्दू जूबां है, जो हम बोलते हैं।

मैं कहता हूं, ये तुलसी जूबां है जो हम बोलते हैं। लेकिन पता किसको लगे?

जिन्हके श्रवन समुद्र समाना।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना।।

तो, प्रेम और परमारथ। प्रेम है मूल। 'मानस' का 'तापस' शब्द; बहुत बड़े तपस्वी है उसके बाद तुरंत शब्द आता है 'सम।' एक अर्थ तो ये तपस्वी समता से भरा होना चाहिए। और दूसरा, तपस्वी शांत होना चाहिए। हमारे यहां तपस्वी उग्र बहुत है! शाप देने में देर नहीं लगती! तप की बड़ी महिमा है। 'मानस' ने तो तप की महिमा का शिखर छुआ है।

तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता।
तपबल बिष्नु सकल जग त्राता।
तपबल संभु करहिं संघारा।
तपबल सेषु धरइ महिभारा।

तो, 'मानस' में जहां 'तापस' शब्द है, प्रेमी के परिचय के रूप में 'तापस' शब्द आया है। मेरा मानना है कि प्रेम के समान तपस्वी कोई नहीं। आबरुदार आदमी प्रेम नहीं कर सकता। प्रेम मानी इधर-उधर की बात जो करते हैं वो प्रेम नहीं। ये आसमां को छूनेवाला प्रेम है।

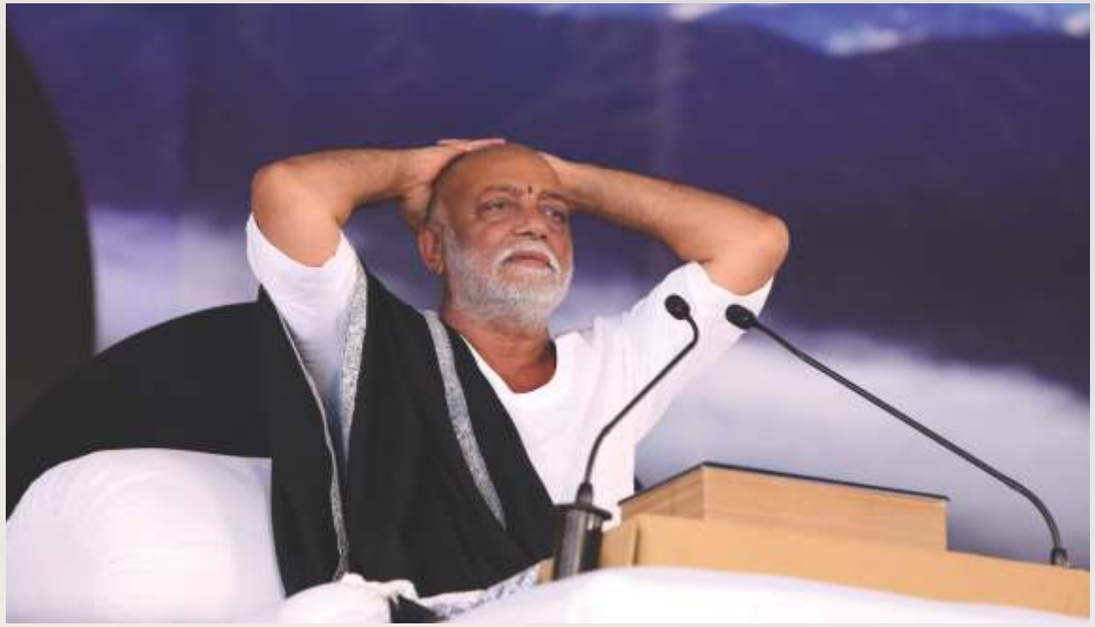

प्रेम वो है जो अगन में रहता है। आग का दरिया है। जानकी को भक्ति कहते हैं; माया कहते हैं। जगद्गुरु उसको शांति कहते हैं। और सीता यदि भक्ति है तो सीता प्रेम है। चाहे शांडिल्य को ले लो, नारद को ले लो, अंगीरा को ले लो। जिधर भी पूछो तो प्रेम के बिना भक्ति संभव नहीं। और 'अरण्यकांड' में भक्ति अग्नि में समाई है।

तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा।

असली जानकी को, असली भक्ति को, असली प्रेम को राम ने कहा, तुम अग्नि में समा जाओ। प्रेम अगन निवासी है। छाया गगन निवासी है। वास्तविकता क्या? असली भक्ति तो अगन में रहती है। छाया आकाश में उड़ती रहती है। हमारी भक्ति भी छाया जैसी है, इसलिए उड़ती रहती है! यहां से यहां! यहां से वहां! हमारी उड़ती भक्ति है।

'मानस' में जो 'तापस' शब्द है; आज तक उसके रहस्य खोजने के लिए हमारे 'मानस'जगत के मनीषी उपकार करते जा रहे हैं कि कौन तापस था? कहां से आया? क्या था? लेकिन तुलसी ने खुद संकेत दिया 'मनहु प्रेम'; ये कौन था तपस्वी? ये प्रेम था। और राम कौन था?

राम ब्रह्म परमारथ रूपा।

फिर नारद के भक्तिसूत्र लगाते जाओ जिसको 'मानस' को इस रूप में देखना है। प्रेम अलखित है। उसकी गति वक्रगति होती है। पता नहीं लगता। प्रेम वैरागी होता है। प्रेम रागी हो ही नहीं सकता।

तेहि अवसर एक तापसु आवा।
तेजपुंज लघुबयस सुहावा।।
कबि अलखित गति बेषु बिरागी।
मन क्रम बचन राम अनुरागी।।

तेजपुंज; बड़ा तेजस्वी; लघुबयस। प्रेम सदैव छोटी उम्र का होता है। प्रेम कभी बूढ़ा नहीं होता। बूढ़ा होता ज्ञान, वैराग्य। भक्ति जुवान है। प्रेम निरंतर ताज़ातरोज़ा है। प्रेम बड़ा तापस है। प्रेम बड़ा मासूम भी है। एक फूल को देखकर आप नहीं कहोगे कि ये फूल मासूम भी है और फूल तपस्वी भी है? बहुत कस्मकस के

बाद वो खिलता है। बहुत-सी आंतरिक प्रक्रिया से ये गुजरता है। तो, राम है परमारथ। तापस है राम प्रेम। मेरा मानना गुरुकृपा से कि प्रेम जैसा तपस्वी कोई नहीं।

आप मुस्कुराते रहो। आप दूसरों को प्यार से देखते रहो। बिलग अर्थों में ले गये तो जिम्मेवारी आपकी। ये गंगा का तट है। मैं जिस स्तर से कह रहा हूं उसी अर्थ में प्रेम को समझना क्योंकि 'प्रेम' शब्द यूझ करते-करते इतना बदनाम कर दिया प्रेम को! प्रेम की एक ऊंचाई है बाप! इसी अर्थ में समझना। और तपस्वी शांत हो। तप तो हमारी नींव है। उसमें उष्मा होती है, उष्णता नहीं होती। आंदोलन-संघर्ष उष्णता पैदा करता है, उष्मा नहीं। मैं गांधी को सलाम करूं कि उनके आंदोलनों ने उष्णता पैदा नहीं की उष्मा; एक नवचेतना पैदा की। हर जेलवास के बाद ये साबरमती का संत ताज़ातरोज़ा होकर बाहर आता था। रहता है प्रेम आग में लेकिन उष्णता नहीं। दझाये ना, जलाये ना; उष्मा दे। तरोताजा रखे। साधु प्रेमी होना चाहिए, साधु मुस्कुराता होना चाहिए। जैसे मेरा राम मुस्कुराता है -

मन मुसुकाई भानुकुल भानू।
रामु सहज आनंद निधानू।।

भारत का साधु मुस्कुराता रहा इसीलिए भारत के साधु की महिमा है।

जागबलिक बोले मुसुकाइ।
तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई।।

मुंह बिगाड़कर याज्ञवल्क्य ने कथा नहीं की! गाते-गाते की। एक घडे से हुआ था कुंभज। उसने गाने के आरंभ कर दिया था। बीए ई बावो नहीं!

मरने से सब जग डरा मेरो मन आनंद।
कब मिलही कब भेट हो पुरन परमानन्द।

'महाभारत' में तो मृत्यु को सुंदर स्त्री के रूप में भगवान वेदव्यास ने प्रस्थापित किया। मृत्यु भयानक है ही नहीं। वो तो एक रमणीय सुंदरी है। डरना क्या? तो, कोई प्रश्न नहीं मृत्यु का यार! हम तो सब नफे में जी रहे हैं। मुझे पता है, प्रायमरी स्कूल में था जब पैंतीस मार्क्स से विद्यार्थी को पास कर दिया जाता था। तीस ले तो पांच कृपागुण दे देते थे। पैंतीस साल की उम्र के बाद जितनी उम्र है, आनंद ही है। बाकी पैंतीस साल में पास हो जाना है। मैं बहुत कहता हूं कि जिसके पास बुद्धपुरुष है उसकी माँ कभी मरती नहीं। उसका बाप कभी मरता नहीं। जिसके पास बुद्धपुरुष है उसका बेटा, बेटी कोई मरता नहीं। एक बुद्धपुरुष सब गरज पूरी कर देता है। सद्गुरु की महिमा इतनी है। मृत्यु रमणीय है।

तो, भरद्वाजजी का जो परिचय है वो तापस है। समता और शांत है। तप दाहकता पैदा न करे, शैत्य पेदा करे। इक्कीसवीं सदी में अब शाप नहीं, सावधान होना चाहिए। ये काल बिलग था। जहां नारद विष्णु को शाप देते हैं। आज इक्कीसवीं सदी में इतने गहन शाप सहन करने की किसी में शक्ति नहीं है। और न हम में शाप देने की ताकत भी है। साधु मुस्कुराता हुआ समय आने पर जीव को सावधान करे कि आगे खतरा है। शाप में कितनी ऊर्जा खत्म हो जाती है! सावधान हो। और आशीर्वाद तो बड़ी महिमावंत वस्तु है। संतगण, ज्येष्ठ और वरिष्ठगण हमें देते हैं। लेकिन आशीर्वाद देनेवाला भी सावधान, एक दूसरा शब्द मेरी व्यासपीठ कहती है, 'समाधान'; आशीर्वाद के साथ समाधान भी दे दो कि आशिष के साथ समाधान एडवान्स में दिया जाय।

भरद्वाजजी का प्रथम लक्षण, मूल है प्रेम; फूल है परमारथ। ये तापस है, सम-दम के धारक है और संवेदनशील है। दयानिधाना है। प्रभुप्रेम, तापसपना, सम, दम और उसके बाद बहुत आवश्यक अंग साधु का लक्षण है वो है संवेदना। संवेदना से भरे है भरद्वाजजी। भारत के प्रथम राष्ट्रपति आदरणीय महामहिम राजेन्द्रबाबू ने राष्ट्रपति भवन में एक सत्संग गोष्ठी की और स्वामी शरणानंदजी को निमंत्रित किया गया। एक समय था,

राष्ट्रपति भवन में संतों को बुलाया जाता था। कुछ बातों के कारण सनातन सत्य को ठुकराया जा रहा है। नासमझ भरी सांप्रदायिक बातें हो रही है! साधु भयमुक्त होना चाहिए। सत्ताधीश भी भयमुक्त होना चाहिए। मुझे राष्ट्रपतिपद के प्रति एक भारतीय नागरिक होने के नाते आदर रहता है और प्रणवबाबू बैठे हैं। मैं विनय से भी व्यासपीठ से कहता हूं कि राष्ट्रपति भवन में सेंकडों एकर ज़मीन है तो दस-पंद्रह गाय नहीं रख सकते? एक छोटी-सी गौशाला राष्ट्रपति भवन में हो। दुनिया को मेसेज मिलेगा। और वे गौशाला बनायेंगे तो पांच गाय गीर की मैं भेजूंगा।

गाय बचनी चाहिए। आदरणीय प्रधानमंत्री अपने भवन में गये, तुलसी का पौधा लेकर गए। मैं प्रणाम करता हूं। और मैंने सुना, अबके प्रधानमंत्री महोदय गए अपने भवन में तो 'रामचरित मानस' लेकर गए। दुनिया में योगदिन हो सकता है। तो गौदिन भी हो सकता है। और राम क्यों आये थे? चार कारणों के लिए आये थे राम। एक कारण था -

विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।

यदि रास्ते में भटकती गायों को बंद करनी है तो कुछ ठोस कदम उठाना ही पड़ेगा। पहल करे राष्ट्रपति। लाभ हो ना हो, कोई हानि भी तो नहीं होगी। तो, स्वामी शरणानंदजी को बुलाया। महाराजजी को आदर दिया गया और फिर राजेन्द्रबाबू ने विनय किया कि महाराजश्री, हमारा मार्गदर्शन करे कि रास्ता है, दिखाई देता है। रास्ते पर चले तो मंझिल भी दिखती है। इच्छा भी है कि राष्ट्र को हम इस रास्ते पे ले जाय। फिर भी हम कदम नहीं उठा सकते। क्या कारण है स्वामीजी महाराज? एक ही शब्द का प्रवचन था स्वामीजी का कि राष्ट्रपति बाबू, संवेदना का अभाव। संवेदना के अभाव के कारण आदमी कदम नहीं उठा सकता। यदि संवेदना प्रकट हो जाय तो क्या नहीं हो सकता?

तो, 'बालकांड' अंतर्गत प्रयाग की पावन भूमि पर जो 'परमारथ' शब्द भरद्वाज मुनि के सद्गुणों की शृंखला में फूल के रूप में आया है ऐसा व्यासपीठ का समझना है, क्योंकि मूल में है प्रेम; फूल है परमारथ। लेकिन एक शब्द ओर परमारथ का विशेषण 'सुजाना', परमारथ समझपूर्वक हो। बहुत विवेकपूर्वक हो। उसमें आदमी सुजान होना चाहिए। बिना सोचे परमारथ नहीं।

ईसाई धर्म में एक बात कही जाती है कि एक चर्च में पादरी महोदय रविवार की प्रार्थना के बाद प्रवचन कर रहा था। पादरी धर्मगुरु ने श्रोताओं को संबोधित करते हुए कहा। सेवा करो, सेवा करो, सेवा करो। तीन बार कहा, दो युवक सुन रहे थे। उसको लग गया उपदेश। लग गई! और धर्मगुरुसाहब ने कहा कि अगले रविवार को जब आप सब आये तब जिसने सेवा का आरंभ किया हो वो हमें रिपोर्ट करे। अगले रविवार पूछा। बोले, 'आपका प्रवचन सुनकर जाग गया; सेवा की।' 'कौन-सी सेवा?' 'एक बूढ़ी माताजी रास्ते पार करने के लिए किनारे पर खड़ी थी उसको हाथ पकड़कर रास्ता क्रोस करवाया।' 'बहुत अच्छे युवक, धन्य हो।' दूसरे को पूछा, 'तुमने क्या किया?' तो बोले, 'मैं वहां से पकड़कर इधर ले आया!' पहले ने कहा, 'फिर मैं पकड़कर उधर ले गया! सात फेरे लगवाये! बूढ़ी चिल्लायी।' परमारथ करो लेकिन सुजानता के साथ करो, समझ के साथ करो।

तो, 'मानस-परमारथ', जिसमें भरद्वाजजी परमारथ का ज्ञाता है और इसलिए शायद राम जब भरद्वाजजी के आश्रम एक रात्रिमुकाम करते हैं और जब वहीं से बिदा लेते हैं तब भरद्वाजजी से पंथ पूछते है कि भगवंत, हमको बताओ कि हम किस मारग पर जाय? रास्ता उसीको पूछो जो परमारथ को जानता हो। स्वार्थी को रास्ता न पूछा जाय। रामजी कहते हैं, हम कौन रास्ते पे जाय और वहां भी मार्गदर्शक के रूप में मुनि भरद्वाजजी ने रामजी को रास्ता दिखाने के लिए शिष्यों को कहा कि आप जाओ। तो सुनते ही पचास शिष्य खड़े हो गये! दो

घडी उनके साथ चलना जीवन की सार्थकता थी। पचास में से भरद्वाजजी ने चार को चुना। कहते हैं, मार्गदर्शन के लिए वेदों को भेजा है। चार वेद साथ चले। ये चार वैदिक मार्गदर्शक भी कब तक? 'तेहि अवसर एक तापसु आवा।' तापस आया ही और भगवान ने चारों को कहा, जाओ। जीवन में प्रेम आ जाय फिर वेद भी प्रसन्नता से आशीर्वाद देकर लौट जाय।

'मानस' में खोज कीजिए, कितने मारग की बातें हैं? मुझे सब मारग की चर्चा नहीं करनी है। गुरुकृपा से सात मारग की चर्चा करनी है और ये सात मारग एक परमारथ मागर में समा जाते हैं। ये है 'मानस-परमारथ।' मुझे खुशी है, आज की युवानी बहुत खोज करती है। अब तो इन्टरनेट पर 'मानस' का कौन शब्द कितनी बार आया तुरंत बता देगा कि इतनी बार ये शब्द आया। पहले तो कौन शब्द कितनी बार आया ये खोजके थक जाते थे! बहुत पंथों की चर्चा है। कुछ पंथों का अवलोकन करें। परमात्मा की कृपा से हम समीक्षा करके अनुभव करे तो हम इस पथ पर तुलसी के साथ कुछ डगर चले। रामराज्य स्थापित हुआ तब वर्णाश्रम में सब अपने-अपने धर्मों में निरत लोग चले। तुलसीदासजी वहां वेद-पथ का संकेत करते हैं। एक पथ है हम सनातन धर्मावलंबीयों के लिए वेद-पथ, वैदिक मार्ग।

गांधीजी कहते थे कि भारत से सभी शास्त्र कोई ले जाय तो देने का तो जी तो नहीं चलता, लेकिन ले जाय तो ले जाने दो। कोई इतिहास ग्रंथों को ले जाय तो ले जाने दो, लेकिन 'उपनिषद' कोई न ले जाय। इनमें भी 'इशावास्य उपनिषद' एक मेरे हाथ में रख दे, बाकी मैं सब दे दूं। इसमें से भी पहला वाक्य 'ईशावास्यं इदं सर्वम्।' चिंतन का शिखर है साहब! अनटच है। एवरेस्ट तो बहुत ऊंचाई है, लेकिन वहां तो स्पर्धा होती है। कैलास भी अनटच है, क्योंकि वहां स्पर्धा का मामला नहीं, श्रद्धा का मामला है।

एक पथ है 'मानस' में वैराग का पथ।

होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथपन।
हृदय बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु।।

स्वयं मनु और शतरूपा, उसको उम्र हुई तो लगा कि विषयों में बैठा रहूंगा तो वैराग कभी नहीं आयेगा। और वैराग का मारग जब उठाया तब तुलसी लिखते हैं -

पंथ जात सोहहिं मतिधीरा।
ग्यान भगति जनु धरें सरीरा।।

गुजराती में गाते हैं -

वैरागना पंथीने विघन आवे घणां।

निष्कुळानंदजी कहे -

त्याग न टके रे वैराग विना, करीए कोटि उपाय जी.

तीसरा पथ भक्तिपथ। प्रेमपथ ये तीसरा मारग है। चौथा पथ किसी न किसी संदर्भ में धर्मपथ है। पांचवां पथ है सत्यपथ। सत्य की राह बताई सद्गुरुजी ने -

मेरे मन की भ्रांति मिटाई।
सद्गुरुजी ने सत्य की राह बताई।

तुलसीदासजी एक ओर पंथ की उद्घोषणा करते हैं ज्ञानपथ। ज्ञान का पथ। और एक दंभीपथ। गोस्वामीजी लिखते हैं -

नारि बिबस नर सकल गोसाईं।
नाचहिं नट मर्कट की नाईं।।
माया खलु नर्तकी बिचारी।

हम सोचते हैं, हम जान गये लेकिन शास्त्र किसी के वश नहीं होता। राजा किसी को वश नहीं होता और युवती किसीसे वश नहीं होती। ऐसा 'मानस' का सिद्धांत है। तो, आपको समय मिले तो खोज करना कि कितने पंथ है। परमारथ के पंथ को समझ लिया उसने सत्य समझ लिया; उसने भक्ति समझ ली; उसने बैराग समझ लिया; उसने धर्म समझ लिया। तो, 'मानस' में हर एक 'परमारथ' शब्द का अपना विशिष्ट अर्थ गांभीर्य है। हरेक 'परमारथ' शब्द में 'मानस' में तुलसी का एक नया

दर्शन झलकता है। आप यदि पूछे कि ये परमारथ कैसे प्राप्त हो, तो -

रामनाम अवलंब बिनु परमारथ की आस।
बरसत बारिद बूंद गहि चाहत चढ़न अकास।।

बादल बरसे और बूंद को पकड़कर आदमी आकाश में चढ़ने की जैसे विफल चेष्टा करता है वैसे हरिनाम के बिना परमारथ का मारग मुश्किल है। मूल में प्रेमपूर्वक हरिनाम। इसलिए गोस्वामीजी का अगला प्रकरण है हरिनाम महिमा अथवा रामनाम महाराज की वंदना। तो, वंदना प्रकरण में गोस्वामीजी ने सीता-रामजी की वंदना की। 'मानस' की एक सूत्रात्मक चौपाई है नाममहिमा में कि भाव से, कुभाव से, अनख से, आलस से, कैसे भी हरिनाम लिया जाय। आंतरिक प्रदूषण से यदि मुक्त होना है, किसी भी प्रकार से तो हरिनाम आवश्यक है। गोस्वामीजी का दावा है कि मैंने जाना है जैसे पृथ्वी बीजमय है, आकाश नक्षत्रों से ओलरेडी भरा हुआ है, बिलकुल उसी तरह रामनाम सब धर्ममय है। रामनाम ये प्रणवरूप है और वेद का प्राण है। तो प्राण भी है रामनाम और सार भी है रामनाम। हेतु भी रामनाम। आखरी तत्त्व, निष्कर्ष वो भी राम। महामंत्र समझकर शंकर उसका जप करते हैं। रामनाम भी महामंत्र है और रामकथा भी महामंत्र है। हम छायामात्र है फिर भी इस रामकथा के नाते आकाश में उड़ते रहते हैं। हमारे नीतिनभाई वडगामा, कवि भी और रामकथा के संपादक, उसने एक कविता लिखी -

पोथीने परतापे क्यां क्यां पूगियां!
भगवा रे अंकाशे जईने ऊडियां!

पोथी हम वक्ताओं की पंख है, हमें उड़ान देती है। ये कहां से कहां ले जाती है! मेरे युवान भाई-बहन, आपकी जोली में 'रामचरित मानस' हो, 'भगवद्गीता' हो, विश्व में आपका परिचय-पत्र है। तो रामनाम महामंत्र है। शिव इस महामंत्र को बुद्धि से जपते हैं, तो काशी में मुक्ति का भंडारा चलाते हैं रामनाम के प्रताप से। गणेशजी ने केवल रामनाम लिखा और परिक्रमा की, पूरी दुनिया में पूजनीय हो गये।

तो, बहुत बड़ी नाम की महिमा है। त्रेतायुगीन राम ने जो लीलायें की वो कलियुग में रामनाम महाराज द्वारा संपन्न होती है। तुलसी ने रामनाम को अधिक श्रेष्ठ बता दिया। नाम जपने से दसों दिशा में मंगल हो जाता है। आदमी की दिशा बदल जाती है, दशा भी बदल जाती है। सतयुग में ध्यान की प्रधानता थी। त्रेता में यज्ञ की प्रधानता थी। द्वापरयुग में पूजा-अर्चना शुरू हुई और कलियुग में केवल नाम की महिमा। और नाम लेने से ध्यान भी हो जाता है। नाम लेने से यज्ञ हो जाता है। नाम लेने से घंटों की पूजा अपनेआप हो जाती है।

मेरा मानना है कि प्रेम के समान तपस्वी कोई नहीं। प्रेम मानी इधर-उधर की बात जो करते हैं वो प्रेम नहीं। ये आसमां को छूनेवाला प्रेम है। प्रेम वो है जो अगन में रहता है। आग का दरिया है। जानकी को भक्ति कहते हैं; माया कहते हैं। जगद्गुरु उसको शांति कहते हैं। और सीता यदि भक्ति है तो सीता प्रेम है। चाहे शांडिल्य को ले लो, नारद को ले लो, अंगीरा को ले लो। जिधर भी पूछो तो प्रेम के बिना भक्ति संभव नहीं। मैं जिस स्तर से कह रहा हूं उसी अर्थ में प्रेम को समझना क्योंकि 'प्रेम' शब्द यूझ करते-करते इतना बदनाम कर दिया प्रेम को! प्रेम की एक ऊंचाई है बाप!

वाद विभूति है, लेकिन संवाद विभु है

मानस-परमारथ : ३

'मानस-परमारथ', जो इस नव दिवसीय रामकथा का केन्द्रबिंदु है। गोस्वामीजी 'रामचरित मानस' में 'परमारथ' शब्दब्रह्म का प्रयोग करते हैं। 'बालकांड' में जहां 'परमारथ' शब्द का आरंभ करते हैं और 'उत्तरकांड' में जहां 'परमारथ' शब्द का विराम देते हैं, दोनों जगह दो साधु बैठे है। साधु से परमारथ का आरंभ बताया है। और परमारथ का समापन नहीं कर रहा है, लेकिन ये तो एक दूसरे साधु का परिचय में भी 'परमारथ' शब्द आया है।

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिन्हहि राम पद अति अनुरागा।।
तापस पथ परम सुजाना। परमारथ पथ धरम सुजाना।।

भरद्वाजजी का परिचय कराते गोस्वामीजी कहते हैं, परमारथ मारग के जानकार है। ऐसा ही 'उत्तरकांड' में होता है; जो भी परमारथ मार्ग का जानकार है। और मेरे भाई-बहन, ये न भूले कि परमारथ का मूल प्रेम है। प्रेमरूपी मूल का फूल परमारथ है। और प्रेम का एक लक्षण है मिटा देना। और प्रेम मिटा देता है। फिर कुछ नया बनता है; उसको नारदजी 'प्रतिक्षण वर्धमानं' कहते हैं। एक बीज पूर्णत: अपने को विगलित करता है, फिर अक्षयवट निर्मित कर देता है। इसलिए रामकथा को संतों के आशीर्वाद से मैं प्रेमयज्ञ कहता हूं।

आज एक युवक ने पूछा है, 'बापू, मुझे अच्छा वक्ता बनना है। कोई नुसखा बताओ।' सब वक्ता हो जायेंगे! हमारे लिए भी कुछ छोड़ो! लेकिन वक्ताओं की बहुत जरूरत है। कथा निरंतर होती है। बाबाभुशुंडि के आश्रम में और याज्ञवल्क्य के आश्रम में कथाविराम का लिखा नहीं। वो तो अभी त्रिवेणी की तरह बहती है। काश, हम सुन पाये! किसी ने पूछा है, 'योगदिन होता है इस तरह कथा का दिन नहीं होता?' नहीं। कथा का दिन एक नहीं होता। प्रत्येक दिन कथा के होते हैं। कथा के तो सब दिन है। 'वाल्मीकि रामायण' में आया है, सूर्य ने हनुमानजी को आशीर्वाद दिया जब द्वन्द्व ने प्रहार किया। हनुमानजी गिर गए तो सूर्य ने आशीर्वाद दिया कि आज से मैं मेरे तेज का सौवां हिस्सा तुझे देता हूं। तो पूछा कि इससे क्या होगा? तो बोले इससे तुझे शास्त्र प्राप्त करने की शक्ति आएगी। फिर हनुमानजी पूछते हैं कि शास्त्र पढ लूं आप से फिर क्या होगा? दुनिया का सबसे बड़ा वक्ता हो जायेगा। जिस को वक्ता बनना है वो उजास की उपासना करे। यद्यपि हमारे ब्रह्मलीन अखंडेश्वर महाराज कहा करते थे कि अच्छे वक्ता बनने के लिए कालिका के शरण में रहना जरूरी है। लेकिन वाल्मीकि का यदि संदर्भ ले किसी को वक्ता बनना है तो सूर्य उपासना जरूरी है। तो, याज्ञवल्क्य कहते हैं -

प्रथमहिं मैं कहि सिव चरित बूझा मरमु तुम्हार।
सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त बिकार।

सीधा प्रेमपत्र दे दिया। तो, भरद्वाजजी है रामउपासक और ये शिवप्रेम। और दूसरा जो परमारथ का ज्ञाता उज्जैनवाला शंभु उपासक, है शंभु उपासक लेकिन नहीं हरि निंदक -

परम साधु परमारथ बिंदक।
संभु उपासक नहिं हरि निंदक।।

और भरद्वाज प्रयाग में बैठे हैं गुरु के कारण और ये परमसाधु उज्जैन में बैठा है शिष्य के कारण।

मेरा तो जो भी कदम है वो तेरी राह में। ये वक्तव्य शिष्य का होना चाहिए। और फिर गुरु उसका जवाब देता है कि तू जहां भी रहे, मेरी निगाह में। गुरु की निगाह के बाहर कोई नहीं हो सकता। ये बुद्धपुरुष मेरी दृष्टि में ये उज्जैन का विप्र 'परमसाधु परमारथ बिंदक।' जो परम शिवउपासक होते हुए हरि की निंदा नहीं। और वो बैठा है एक आनेवाले शिष्य के कारण और आप जानते हैं, गुरु उदार है, शिष्य संकीर्ण है। उसको गुरु जब कहते हैं कि हरिपूजा सब करते हैं, शिव भी उसकी सेवा करते हैं और जब शिव को सेवक कहा तो उसको बुरा लगा। और हम जानते हैं, मंदिर में गुरु आगमन हुआ। और उठकर प्रणाम नहीं किया। देव विराजमान है मंदिर में, लेकिन गुरु आ जाय और आदमी देव की पूजा करता हो, आधी पूजा हो गई उसी समय गुरु आ जाय तो आधी पूजा देव को चढ़ाने की नहीं होती, गुरु को चढ़ाने की होती है। चुक गया आदमी! और गुरु तो परम साधु था। इसलिए जरा भी दु:खी नहीं हुआ, लेकिन सह नहीं सके महेश। और शंकर भगवान ने बहुत वो कर दिया और शिष्य के कल्याण के लिए 'रुद्राष्टक' गाया गया -

निराकारमोंकारमूलं तुरीयं।
गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।।
करालं महाकाल कालं कृपालं।
गुणागार संसारपारं नतोऽहं।।

वहां भरद्वाज मुनि के आश्रम में शिव की कथा के बाद रामकथा का आरंभ हुआ और उज्जैन में 'रुद्राष्टक' के बाद भुशुंडि के विश्राम का आरंभ हुआ। जब कृपा हो गई। शाप का वो तो करना पड़ेगा, लेकिन अनुग्रह कर दिया। तो, प्रयाग का साधु भी 'परमारथ पथ धरम सुजाना' और उज्जैन का साधु 'परमसाधु परमारथ बिंदक।' तो, 'रामचरित मानस' में जहां-जहां 'परमारथ' शब्द है वहां कुछ न कुछ परम संदेश छिपा है। चार बार जहां तक मेरी गिनती है, 'परमारथबादी' शब्द का प्रयोग गोस्वामीजी ने किया है। जिसका कोई वाद होता है उसको हम कहते हैं ये वादी है। ये समाजवादी है, ये साम्यवादी है, वैसा-वैसा। 'वाद' शब्द यद्यपि मेरे स्वभाव में नहीं है। जिसको प्रेम करना है उसको वाद क्या? जिसको ब्रह्म को जानना है उसको तर्कों से क्या लेना-देना? वाद का अवलंबन नहीं। लेकिन भगवान जब अपनी विभूति को वाद के रूप में स्थापित करते हैं तो फिर करे भी क्या? 'भगवद्गीता' के सूत्रानुसार उसको प्रभु ने विभूति कही; मुझे तो इतना ही कहना है कि वाद विभूति है, लेकिन संवाद विभु है। वाद ये ऐश्वर्य हो सकता है, लेकिन संवाद ईश्वर है।

यह सुभ संभु उमा संबादा।
सुख संपादन समन बिषादा।

समाज के जो वाद है, इससे यहां कोई लेना-देना नहीं है। 'रामचरित मानस' में सात व्यक्ति परमरथवादी है। इन लोगों का वाद है परमारथवाद।

अज महेस नारद सनकादी।
जे मुनिबर परमारथबादी।।

ब्रह्मा, शिव, नारद और सनक आदि सात परमारथवादी है। वाद में पड़ना मत। वादी होना मत, लेकिन हमारे ये परमतत्त्व जिस वाद का स्वीकार करते चल रहे हैं यदि उसी रास्ते पर हम जाये तो बहुत कल्याण हो सकता है।

तो, परमारथवादियों का लक्षण क्या? पार्वती ने एक प्रश्न पूछा, हे भगवन्, ये राम को ब्रह्म कहते हैं, अनादि कहते हैं।

अगुन अनंत अखंड अनादी ।
जेहि चिंतहिं परमारथबादी।

कौन परमारथवादी? जो राम को ब्रह्म कहते हैं, अनादि कहते हैं, अनंत मानते हैं, अखंड मानते हैं, साक्षात् रूप में कबूल करते हैं, ये परमरथवादियों के लक्षण बताये। यद्यपि बहुत से लक्षण 'मानस' में आप से मिले हैं।

तुम्ह पंडित परमारथ ग्याता ।
धरहु धीर लखि बिमुख विधाता ।।

एक सूत्र आता है कि तुम पंडित हो, परमारथ के जानकार हो। परमारथ के जानकार पंडित हो का अर्थ तुरंत 'धरहु धीर लखी वाम विधाता।' विधाता वाम हो ऐसे समय में भी जो अपना धैर्य न त्यागे वो परमारथी है। यदि समय विपरीत हो, विधि वाम हो और हम धैर्य गवां दे तो समझना, हम स्वार्थवादी है।

तुलसी असमय के सखा धीरज धरम विवेक।
सहित साहस सत्यब्रत रामभरोसो एक।।

तुलसीदासजी कहते हैं, 'दोहावली' में कि खराब समय आदमी का चलता हो उसी समय तेरे सात सखा तुम्हें मदद करे। सबसे पहला नाम धीरज का रखा। धैयकंथा। परिभाषा भी मिल जाती है हमारे आंतरिक विकास और विश्राम के लिए। तो, विषम काल में धीरज रखे। बहुत कठिन है। व्याख्या करनी आसान है। और 'मानस' में तो लिख दिया, इनकी धीरज की परीक्षा तो विपत काल में होती है, इनके बिना तो हो ही नहीं सकती।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी ।
आपद काल परिखिअहिं चारी ।।

धीरज, धरम, मित्र और मातृशरीर इनकी परीक्षा विपत्तिकाल में ही होती है। अपने धैर्य का विपत्तिकाल में ही पता लगे कि कितना धैर्य है। धर्म विषम परिस्थिति में हम कितने टके रहे। मित्र विपत्तिकाल में कितना साथ देता है। और नारी, यहां आलोचना के रूप में नही है, एक सन्मान के रूप में। सहित; साहित्य, अच्छा साहित्य, अच्छी कविता, अच्छा शास्त्र, मंगलमय, अच्छा वाङ्मय चलो। और सत्यव्रत, इसमें जो धैर्य त्यागे नहीं उसको परमारथवादी, उसको परमारथ कहते हैं।

तो, हे भगवान्, आप परमारथ ज्ञाता है, आप पंडित है और समझानेवाला एक निषाद है। सुमंत जैसे एक साधुचरित महापुरुष, सुमंत श्रोता है उसको विषादयोग को प्रसाद में बदलना है गुह को। परमारथ की व्याख्या गुह कर रहा है, क्योंकि दीक्षित हुआ है गत रात्रि में। वो जो प्राप्त हुआ है उसका उपयोग सुबह करते हैं। जब सुमंत की विदा का प्रसंग आया तब कहते है -

तुम्ह पंडित परमारथ ग्याता ।
धरहु धीर लखि बिमुख विधाता ।।

तो, ये सात परमारथवादी है। और राम है ब्रह्म परमारथरूप। इन सातों परमारथवादियों को एक बार पूछा गया कि आप परमारथवादी है; तो परमारथरूप राम को आप अनंत कहते हैं, अनादि कहते हैं, अखंड कहते हैं, लेकिन ये सब जानकारी प्राप्त होने के बाद आपका परमारथवाद है। आप उस वाद के फलस्वरूप और कुछ चाहते हैं? तब हां कही, हां, हम एक वस्तु चाहते हैं। स्वार्थवादी भी चाहते हैं, परमारथवादी भी चाहते हैं।

जासु कृपा अज सिव सनकादि ।
चहत सकल परमारथ बादी ।।

परमात्मा मिलने के बाद भी हमारे यहां एक चाह है और वो परमात्मा की कृपाप्राप्ति। परमात्मा तो सबको मिला हुआ है, परमात्मा की कृपा भी सब पर बरस रही है फिर

भी ये सातों परमारथवादी भी कृपा के जाचक है। कृपा की चाहना करते हैं।

तो, तुलसी का वक्तव्य नीति हो, प्रीति हो, स्वारथ हो, परमारथ हो। यथार्थ राम के समान कोई नहीं जान पाया। पूरे जड़-चेतन जीवन का एकमात्र स्वार्थ है कि मन-वचन-कर्म से कोई परम के चरणों में हमारा मन स्थिर हो जाय। इस स्वार्थ के ज्ञाता राम है। उनके समान कौन जानता है? आये दिन भरत का स्मरण करना चाहता हूं कि भरत भी सब कुछ जानता है। एक ब्रह्मचारी हो तो उसका आदर्श कोई परम ब्रह्मचारी हो सकता है। एक गृहस्थ होगा तो उसका आदर्श कोई ऐसा गृहस्थ जो ब्रह्म को बच्चा बना सके। और कोई संन्यासी, यति आदि उसका कोई परम संन्यासी अथवा 'गीता' के शब्द में कहा जाय तो 'नित्य संन्यासी' उसका आदर्श बन सकता है। लेकिन एक 'रामचरित मानस' का भरत ऐसा है कि चारों के आदर्श बन बैठे।

प्रमुदित तीरथराज निवासी।
बेखानस बटु गृही उदासी।

चारों आश्रम का आदर्श। एक नीति को जानता था, जो प्रीति को जानता था, जगत में स्वार्थ क्या है उसका भी उसको पूरा ज्ञान था। और परमारथ क्या वो भी पूर्ण रूप में जानते थे।

कहहिं परस्पर मिलि दस पाँचा।
भरत सनेहु सीलु सुचि साँचा।

प्रेम और शील की इतनी आखरी व्याख्या मुझे तो कहीं नहीं मिली! जिसको प्रेम और शील के संबंध में जानना है तो मेरे भरत का दर्शन करे। तुलसी तो मान गए हैं; भरत के चरण पकड़कर बैठे हैं। और ये निर्णय प्रयागवासी कर रहे हैं। अद्भुत व्याख्या प्रयागवासीयों ने दी! प्रेम उसको कहते हैं जो पवित्र हो। और शील उसको कहते हैं जो सच्चा हो। शील नकली और झूठा न हो, सच्चा हो।

तो, 'रामचरित मानस' में नीति, रीति, परमारथ, स्वार्थ राम के समान यथार्थ कोई नहीं जानता। 'रामचरित मानस' में भरत के समान ये चारों वस्तु यथार्थ रूप में कोई नहीं जानता और 'रामचरित मानस' में हनुमानजी के समान इन चारों को यथार्थ रूप में कोई नहीं जानता।

रामकथा आप जानते हैं, संवाद में चलती है। चार संवाद है। हृदय और बुद्धि दोनों साथ लेकर चार घाट निर्मित किये हैं। चार संवाद स्थापित किये हैं। इनमें गोस्वामीजी स्वयं प्रपत्ति के घाट के वक्ता है और अपने मन को और संतगणों को कथा सुनाते हैं। शिव ने पार्वती को सुनाया; याज्ञवल्क्य भरद्वाजजी को और बाबा भुशुंडि गरुड को, तुलसी अपने मन को और साधुसमाज को सुनाते हैं। शरणागति से शुरू करके तुलसीजी हम सबको लिए चलते हैं कर्मघाट पर। शरणागति का कोई गलत अर्थ न कर ले कि अकर्मण्यता। क्योंकि प्रमाद मृत्यु है। इसलिए गोस्वामीजी शुरू तो करते हैं प्रपन्नता से संवाद और लिए चलते हैं प्रयाग के घाट जहां प्रवाह निरंतर बहता है। प्रयाग में महाकुंभ होता है। संतगण सब कोई बिदा लेने लगे। परम बिबेकी याज्ञवल्क्य महाराज के चरणों में प्रणाम करके भरद्वाजजी ने प्रार्थना की कि आप रुक जाईए। क्यों?

नाथ एक संसउ बड़ मोरें।
करगत बेदतत्त्व सबु तोरें।

'महाराज, मेरे मन में बहुत बड़ा संशय है और आप के हाथ में सब शास्त्र हस्तामलक है। वेदों के समस्त तत्त्व आपकी मुठ्ठी में है। मैं प्रतीक्षा में था कि कोई ऐसा आ जाय जिसके सामने मैं मेरे मन की बात रखूं।'

तो, एक प्रार्थना है आप सबको कि संशय मन में होते हैं तो जहां-तहां मन की बात न रखना। इसलिए कोई अच्छी जगह मिल जाय, कोई बुद्धपुरुष मिल जाय

जिसके पास हम अपने मन की बात रख सके, प्रतीक्षा करना। मेरे गोस्वामी जब सद्गुरु को वैद कहते हैं तब मुझे बहुत अच्छा लगता है। सद्गुरु हमें कोई बात की मना करे, क्योंकि रोगी हम है। वो तो समाधि में है, हम सब व्याधि में है! कथा में आये युवान भाई-बहनों को तो मेरी प्रार्थना यही ही है कि यदि कोई बुरी आदतें है तो धीरे-धीरे बंद कर देना। हमारी कनकेश्वरी माँ से मैंने एक भजन सुना था कि -

आदत बुरी सुधार ले तो हो गया भजन।

तुम्हारी और हमारी कुछ बुरी आदतें है उसको हम निकाल दे तो हो गया भजन। व्यसन का अर्थ होता है दु:ख। शराब का व्यसन जिसको होता है वो शराब थोड़ी पीते हैं? जानबुझकर वो तो दु:ख पीते हैं! इससे बाहर निकले।

मैंने पढ़ा है, हैदराबाद का नवाब जो था, पांच समय नमाज अदा करता था। बड़ा भक्त था। लेकिन उसकी एक आदत ऐसी थी, इसके घर कोई मेहमान आये और वो सिगारेट पीए और आधी सिगारेट छोड़ दे तो वो नवाब प्रतीक्षा करता था कि कब जाये! जाने के बाद लेकर वो खुद पीता था! अब सम्राट! जो आधी बुझी जूठी सिगारेट वो खुद पीता था, आदत थी! वो आदमी संकीर्ण था, कृपणचित्त था। नमाज पांच अदा करता था! कभी-कभी हमारी भक्ति सफल क्यों नहीं होती? क्योंकि हम कृपण है। परमारथ का मारग इस कथा में हमने क्यों उठाया? परमारथ के मारग का मतलब है औदार्य।

किसी को आदत होती है बस, शिकायतें ही करे! हमारे पुनित महाराज की बनी घटना। हमारे रामभगत सुनाते थे कि उसने यात्रा का संघ निकाला। उसके साथ एक आदमी गया। और ये इतना कृपण था; उसकी तपेली, एक वर्तन था वो कोई चुराके ले गया। तो, रोज सायंकाल को पुनित महाराज सत्संग करे और जैसा सत्संग पूरा होता वो आदमी जाता कि महाराजजी मेरी तपेली गुम हो गई! 'अरे भई, गई तो उसमें क्या? रोज़ यही शिकायत!' पुनित महाराज को एक आश्रित ने कहा कि बाबा, हम दूसरी लाके उसको दे देंगे। बस, झंझट छूटे। तो दूसरी लाके उसको दी। तपेली नई मिल गई तो भी शिकायत! पुनित महाराज ने कहा, अब क्यों शिकायत करता है? तो बोले, 'वो खो गई न होती तो दो होती!'

महाराजश्री तो गायों के लिए समर्पित है। पथमेडावाले बाबाजी भी गायों के लिए नितनये अनुष्ठान करते हैं। मैं भी आप-से कहूं कि आप जहां तक संभव हो, गाय का दूध पीने का निर्णय करो। गाय को पूज्य मानना ये तो है ही। उसके गोबर में लक्ष्मी का वास है, जो कथा है। सब देवताओं ने गाय के शरीर में जगह ले ली। लक्ष्मी देर से आई और गौमाता से कहने लगी, मुझे भी जगह दो। माँ का अंग पूरा देवताओं से संकुल हो गया। तो लक्ष्मीजी को कहा कि अब तो गोबर बचा है। तो बोले, गोबर तो गोबर लेकिन मुझे जगह दो। आज भी गोबर में लक्ष्मी है। गोबर का खाद खेत में डालो, फसल पके और साक्षात् सागर पुत्री लक्ष्मी पैदा होती है।

तो, मेरे भाई-बहन, कई लोगों को संशय की आदत हो जाती है। लेकिन यहां एक संत का संशय है परोपकार के लिए। भगवान रामतत्त्व क्या है, वो मेरे मन में संशय है। भगवान शिव अविनाशी होकर निरंतर रामनाम का जप करते हैं, राम कौन है? आप परमविवेक से मुझे समझाईए कि राम क्या है? 'जागबलिक बोले मुसकाई।' याज्ञवल्क्य कथा की शुरूआत करते हैं तो पहले मुस्कुराते है। इक्कीसवीं सदी में धर्मपुरुष मुस्कुराता हुआ हो। हर एक पीठ मुस्कुराती हुई हो। प्रत्येक आचार्य मुस्कुराते हुए हो। मेरा भगवान किसीको जवाब देते हैं तो पहले मुस्कुराते हैं। और साहब, कोई भी घटना को एक छोटी-सी मुस्कुराहट एकदम हल्की-फूल्की कर देती है।

जिसको परमविवेक की उपलब्धि होगी वो बोलेगा तो सामनेवाले के संशय पर भी मुस्कुराहट देगा। बहुत राजी हुए महापुरुष। और मुस्कुराते हुए याज्ञवल्क्य ने रामकथा का गायन किया।

महामोहु महिषेसु बिसाला।
रामकथा कालिका कराला।।
रामकथा ससि किरन समाना।
संत चकोर करहि जेहि पाना।।

राम कठोर भी है, कोमल भी है। ब्रह्म कठोर भी है, कोमल भी है। तो ब्रह्म की कथा भी कराल भी है, कोमल भी है।

भरद्वाजजी को संकेत करते हैं महापुरुष कि चंद्र सबको उपलब्ध नहीं है, लेकिन चंद्र किरन सबको उपलब्ध है। राम चन्द्र है। लेकिन चंद्रकिरन अनगनित वर्ष की यात्रा करते हुए हमारे घर तक पहुंचती है। राम दूर है, रामकथा संनिकट है। यात्रा करते हुए यदि हम द्वार खोले। तो, रामकथा शशिकिरन है। चंद्र में दाग है, किरन में कोई दाग नहीं है। चंद्र को राहु ग्रस सकता है, रामकथा को दुनिया में कोई राहु ग्रस नहीं सकता। ये शाश्वत है, सनातन है। तो, किरन की तरह रामकथा घर-घर तक पहुंचती है। महिसासुर राक्षस को जैसे कालिका ने मार दिया वैसे महामोह जो हमारा है वो महीसेश है वो कालिका ने मारा। रावण मोह है। उसको राम भी नहीं मार सकते, रामकथा ही मार सकती है।

कहते हैं महाराज, आपने रामकथा पूछी है, लेकिन पहले मैं शिवकथा सुनाउंगा। क्या सेतुबंध करते हैं तुलसी! मेरे भाई-बहन, संकीर्णता में मत पड़ना। शंकर

को हटाया नहीं जाता। एक बार त्रेतायुग में भगवान शिव दक्षकन्या सती को लेकर कुंभजऋषि के आश्रम में गए। कुंभज ने देखा कि जगत के माता-पिता पधारे हैं तो कुंभजऋषि ने पूजा की। और पूजा की ही तो महादेव ने अर्थ निकाला कि महाराज कितने उदार और कितने प्रेमी है! कर्तव्य तो श्रोता का है, लेकिन स्वयं वक्ता मेरी पूजा कर रहा है! सती तो बौद्धिक है, शिव हार्दिक है। तो, सती ने सोचा कि मेरे पति कथा सुनने के लिए मुझे ले आया, लेकिन वक्ता हमारी पहले पूजा कर रहे हैं, खाक कथा सुनायेगा! और जन्म जिसका कुंभ से हुआ वो सागर जैसी कथा क्या सुनायेंगे? ये पंडितजी महाराज का अर्थ है।

भगवान शंकर कथा सुनते हैं। मुनिवर ने रामकथा सुनाई और भगवान महादेव ने कथा सुनी परमसुख से। कथा सुनकर कैलास आते हैं। वर्तमान त्रेतायुग का रामअवतार विद्यमान था। और वो ललित नरलीला प्रभु कर रहे थे। जानकीजी का अपहरण हुआ था और प्रभु लीला करते रो रहे थे और इसी रूप में शिव हरिदर्शन करते हैं। देखा तो दोनों ने लेकिन सती के मन में वो होने लगा, ये कौन है? एक स्त्री खोने से रो रहे और मेरे पति चिदानंद कहकर पुकारते हैं! ये ब्रह्म है क्या? न सत् है, न चित्त है और न कोई आनंद है! अंतर्यामी भगवान शिव जान गये। भगवान सती से कहते हैं, देवी, संदेह ना करो। जिसकी कथा कुंभज ने गाई, जिसकी भक्ति मैंने कुंभज को दी ये मेरे इष्टदेव रघुबीर है। अपने मन को स्थिर करके मुनिदेव जिसका ध्यान करते हैं; वेद, पुराण, शास्त्र आदि 'नेति नेति' कहकर रुक जाते हैं, वोही ये ब्रह्मतत्त्व है देवी।

शिव ने बहुत प्रकार से सती को समझाया। फिर भी सती मानी नहीं, तो शंकर ने गुस्सा नहीं किया। शिव भी समझाने में विफल हुए तो हम किस खेत की मूली! मेरा महादेव मुस्कुराके हरिइच्छा कहकर बात को टाल दी। कहा, आपके मन में संशय है तो देवी, आप जाकर परीक्षा कर लो। हरिमारग प्रतीक्षा का मारग है, परीक्षा का नहीं। लेकिन बौद्धिक सती परीक्षा के लिए तैयार हो जाती है। ये भी नहीं कहा कि आप मेरे साथ चलो। शिव बैठ गए। सामनेवाली व्यक्ति को समझाने का पूरा प्रयत्न कर लेने के बाद भी यदि बात न बने तो ये पंक्ति को मंत्र बना लेना -

होइहि सोई जो राम रचि राखा।

इसके बाद जीव को क्या करना? अपनी बात समझाने से न समझे तो हरि पर छोड़ना और हरिनाम पकड़ना। आज की कथा यहां विराम लेती है।

'वाद' शब्द यद्यपि मेरे स्वभाव में नहीं है। जिसको प्रेम करना है उसको वाद क्या? जिसको ब्रह्म को जानना है उसको तर्कों से क्या लेना-देना? वाद का अवलंबन नहीं। लेकिन भगवान जब अपनी विभूति को वाद के रूप में स्थापित करते हैं तो फिर करे भी क्या? 'भगवद्गीता' के सूत्रानुसार उसको प्रभु ने विभूति कही; मुझे तो इतना ही कहना है कि वाद विभूति है, लेकिन संवाद विभु है। वाद ये ऐश्वर्य हो सकता है लेकिन संवाद ईश्वर है। वाद में पड़ना मत। वादी होना मत, लेकिन हमारे ये परमतत्त्व जिस वाद का स्वीकार करते चल रहे हैं यदि उसी रास्ते पर हम जाये तो बहुत कल्याण हो सकता है।

परमारथ है सत्य का विस्तार, परमारथ है प्रेम का विस्तार,
परमारथ है करुणा का विस्तार

मानस-परमारथ : ४

हम कथा में प्रवेश करे इससे पूर्व मैंने करीब तीन-चार बार व्यासपीठ से और परस्पर वार्तालाप में ये विचार प्रस्तुत किये थे कि राष्ट्रपति भवन में महामहिम राष्ट्रपतिजी कुछ गाय रखे तो एक बहुत प्यारा संदेश जगत को मिलेगा। आज विशेष प्रसन्नता हुई कि ये बात वहां पहुंची और ओलरेडी वहां नब्बे गाय रखी जा रही है, ऐसी सूचना मुनिजी को प्राप्त हुई है। मैं व्यासपीठ पर बैठा हूं इसलिए सभी मेरे पूज्य चरणों को साथ लेकर व्यासपीठ राजपीठ को साधुवाद देती है। और राष्ट्रपति महोदय राष्ट्रपति भवन में गाय रखे तो मैंने कहा था कि मैं पांच गाय भेजूंगा। मैं बोला हूं तो मैं पांच गाय भेजूंगा। चलो, मेरे सार्वभौम भारत का प्रथम नागरिक राष्ट्रपति महोदय यदि रख रहा है तो हमारे लिए बड़े खुशी की बात है। जहां तक संभव होगा ये कथा पूरी हो इससे पहले गाय दिल्ही पहुंचे। बड़ी खुशी हुई।

'मानस-परमारथ', जो इस रामकथा प्रेमयज्ञ का केन्द्रबिंदु है। कलिपावनावतार पूज्यपाद गोस्वामीजी 'परमारथ' शब्द को केन्द्र में रखते हुए तीन श्रेणी में उसकी व्यवस्था करते हैं।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा।

परमारथ; लेकिन उसका एक भाग है परमारथबादी यानी परमारथवादी। दूसरा भाग है परमारथी। अब जहां आपको 'परमारथ' मिले तो ये लोकबोली का प्रयोग है। हमारे आंतरिक विकास और विश्राम के लिए उसकी तात्त्विक-सात्त्विक चर्चा संवाद के रूप में हम करें। मैं फिर से मेरे एक वक्तव्य को आपके चरणों में रखूं, दोहराउं कि मेरी दृष्टि में वाद विभूति है, लेकिन संवाद विभु है। योगेश्वर ने कहा, वाद मेरी विभूति है, मैं हूं। लेकिन संवाद ईश्वर है। वाद है शायद बौद्धिक ऐश्वर्य, लेकिन संवाद है साक्षात् ईश्वर। संवाद से लाभ नहीं होगा, शुभ होगा। लाभ तो कई प्रकार के होते हैं। लेकिन मेरी भारतीय परंपरा में शुभ की महिमा है। 'शुभं करोति कल्याणम्।' लाभ तो बहिर् होता है, शुभ तो भीतरी होता है। विदेश जाओ तो लाभ होगा, लेकिन स्वदेश जाओ तो शुभ होगा। जाओ विदेश, जोब मिलेगी; जाओ स्वदेश, जोग मिलेगा। शुभ है अंतरयात्रा।

तो, परमारथ, परमारथवादी, परमारथी। गोस्वामीजी ने तीनों का हम जैसे जीवों के लिए कृपापूर्वक संवाद रचा। कई लोग होते हैं स्वार्थी, लेकिन बोलते हैं परमार्थी। हम जैसे जीवों में होते हैं स्वार्थी, बातें करते हैं परमार्थी। और कुछ पहुंचे हुए लोग होते हैं परमार्थी, लेकिन उनकी बातें कभी-कभी नासमझों को स्वार्थी लगती है! वो स्वभावगत परमार्थी है, स्वरूपगत परमारथ है। उसको परमार्थी होने के लिए कोई कुछ अर्जित नहीं करना पड़ता। स्वभाव है उसका। गौमुख से गंगा को गंगासागर ले जाने के लिए कोई मोटर नहीं लगाई है। ये उनका स्वभाव है बहना। हम कितना उसका लाभ ले सके ये हमारी क्षमता पर डिपेन्ड है। विज्ञानव्रत्त का एक शे'र है -

मैं तो खुद को बांट चुका हूं।
जाने किसने कितना रखा।

अल्लाह जाने, बुद्धपुरुष तो रज-रज करके अपनेआप को सबके लिए पूरा का पूरा दे देता है।

दरिया था दरियादिल भी,
फिर भी सबको प्यासा रखा।

जगद्गुरु शंकर अपनेआप को समर्पित कर गए। 'महादेव महादेव' करते-करते केदार में समाहित कर गए। तुलसी अपनेआप को निछावर कर गये। तो कई महापुरुष स्वभावगत परमार्थी होते हैं। प्रयास नहीं। स्वरूपगत परमार्थी होते हैं, लेकिन कभी-कभी सामनेवाले की कक्षा के अनुसार नासमझ उसको स्वार्थी का करार दे सकता है! व्यासपीठ कभी किसी को कहे कि आ जाओ, आ जाओ, आगे आ जाओ, तो व्यासपीठ स्वभावगत परमार्थी है, व्यासपीठ स्वरूपगत परमार्थी है, लेकिन हो सकता है किसी को लगे कि ये स्वार्थी है! कईयों को आगे बिठाते है और कई लोग सालों से कथा सुन रहे पीछे। न कभी बुलाया न कभी बातें की। लेकिन स्वभावगत बुद्धपुरुष, व्यासपीठ, 'मानस', तुलसी निकट का नहीं देखते, दूर का देखते हैं। इसलिए लगता है कि कई उसके निवेदन में स्वार्थ है, लेकिन होते हैं स्वाभाविकरूप में वो परमार्थी। और हम जैसे संसारी होते हैं स्वार्थी लेकिन बातें करते हैं परमार्थी! प्रमाण, 'लंकाकांड' में रावण पर राम का विजय हुआ, ऐसा मुझे बोलने में संकोच होता है। राम को क्या जय-पराजय? मैं कहना चाहूंगा, रावण का निर्वाण हुआ। यहां मातली नामक इन्द्र का सारथि रथ लेकर स्वर्ग में चला गया। तब तुलसी की एक पंक्ति आती है -

आए देव सदा स्वारथी।
बचन कहहिं जनु परमारथी।

वचन तो ऐसे बोलते हैं मानो परमारथी है! लेकिन सदा के लिए स्वार्थी है। स्वभावगत स्वार्थी लोग थोड़ा अविनय करके परमार्थी वचन बोलेंगे तो भी बीच-बीच में तो स्वार्थ की गंध आ ही जाती है। इन पंक्तियों में पूरा मिश्रित भाव है, क्योंकि मूलत: ये स्वार्थी है।

बुद्ध निरंतर आनंद को अपने पास रखते थे। मानवस्वभाव तो सबको छूता है। कई भिख्खूओं को लगता था कि बुद्ध का इस आनंद को इतना संनिकट रखने में कुछ हेतु होगा अथवा तो चचेरा भाई है, ये भी एक कारण बन सकता है। लेकिन ये नासमझो का वक्तव्य था! बुद्ध तो स्वभावगत परमार्थी इसलिए आनंद निकट बैठता था, लेकिन बुद्ध की आंखें तो महाकश्यप की ओर रहती थी, जो दूर बैठता था महाकश्यप। हमारे ब्रह्मानंदजी ने गाया।

संत परम हितकारी,
जगतमां संत परम हितकारी।

भुशुंडि ने कहा, हे खगपति, मन-कर्म-वचन से परमारथ करना ये साधु का सहज स्वभाव है। लेकिन लोगों को लगता था आनंद को निकट देखकर और आनंद बहुत घाटे का सौदा कर गया निकट रहकर! जब बुद्ध नादुरस्त हुए और जाने की बेला आई तो आनंद बहुत रोया। बुद्धचरित्र में एक बात मैंने ऐसी भी पाई कि जाते समय तथागत ने जब आनंद बहुत रो रहा था तो कहा, आनंद, अब बुद्ध जा रहा है, आनंद सर्वत्र फैल जायेगा। दो अर्थ में बुद्धपुरुष बोल गये। शरीर से तथागत जा रहा है, लेकिन ये रोशनी हर जगह फैल जायेगी। यानी फैल जाना ये भगवता है। भक्त है बर्फ, भक्ति है नर्तन प्रवाह। लेकिन भगवंत है भाप। इस पानी का वायु रूप। और भाप फैल जाती है, सार्वजनिक हो जाती है। 'हरिद्वारे प्रयागे च गंगासागर संगमे।' मेरे तुलसी भाषांतर में संकेत करते हुए कहते हैं, हरिद्वार, प्रयाग, गंगासागर तीनों बड़े हैं, लेकिन गंगा की भाप, गंगासागर में गई सागर से भाप हुई

और वो फैल जाती है। गंगा बादल बनकर कहीं भी बरस सकती है। ये सार्वभौमता है; ये व्यापकता है। घनपना गया, अमुक घाट को पावन करना, बहना वो भी गया। अब सर्वत्र हो जाना। इसलिए भाई-बहन, परमात्मा से प्रार्थना करो कि भागवत परमार्थी संतों को अथवा कोई भी महापुरुषों को कम से कम हम पहचान पाये। हम उसको समझ सके, इतनी दृष्टि जरूरी है।

घर घाल चालक कलह प्रिय कहियत परम परमारथी।
कैसी बरेखी कीन्हि पुनि मुनि सात स्वारथ सारथि।
उर लाइ उमहि अनेक बिधि जलपति जननि दुख मानई।
हिमवान कहेउ इसान महिमा अगम निगम न जानई।

●

अज महेस नारद सनकादी।
जे मुनिबर परमारथवादी।।

ये सात परमारथवादी है। वादी की संख्या सीमित होती है। स्वभावगत परमारथ की गिनती कोई कर ही नहीं पाता।

तो, नारद परमारथवादी है। 'महाभारत' में नारद का परिचय करवाके व्यासजी कहते हैं, वो धर्मज्ञ है, वो वेदांतज्ञ है, वो संगीतज्ञ है, वो राजधर्मज्ञ है। खबर नहीं, कितने विशेषण भगवान व्यासजी ने नारद के लिए प्रयोजित किए है! नारद परमारथी है, लेकिन कभी-कभी हम कहे कि दूसरे के घर को खतम कर देना ऐसे एक रथ का सारथि नारद है। 'घर घाट चालक कलह प्रिय।' कविता तो देखो साहब! लेकिन 'कहियत परम परमारथी।' ये तुलसीकृत 'पार्वती मंगल' का छंद है।

मैं एक स्मरण कहूं। मैं मेरे दादाजी से 'रामचरित मानस' पढ़ता था तब ये 'पार्वती मंगल' और 'जानकी मंगल' का बहुत-बहुत संदर्भ दादाजी दिया करते थे। उस समय मेरे दिमाग में नहीं आता था कि मैं 'रामायण' पढ़ने बैठा हूं और ये 'पार्वती मंगल' क्यों? हमारे गांव में एक माधा नानजी नाई था, जो दादाजी की चरणसेवा करता था। एक दिन ऐसा हुआ कि दादाजी थोड़े नादुरस्त थे, तो मुझे बुलाया। मैंने सोचा, मुझे क्यों बुलाया होगा? 'रामायण' का रोज का क्रम तो पूरा हो गया था। मैं गया, प्रणाम किया। दादाजी मुझे कहने लगे, मेरे पैर दबा दे। माधा की ड्यूटी साधा को मिली! मैं पेर दबाता था। ये अमृत बेला थी। बहुत प्रसन्न रहे। मुझे लगा, आज अवसर है। मैंने पूछा, दादा, मेरे में बात नहीं उतरती है कि आप 'रामचरित मानस' में अक्सर ये 'पार्वती मंगल' और 'जानकी मंगल' क्यों लाते हो? मैं नहीं समझ पाता। तो कहा कि जीव का कल्याण माँ ही कर सकती है। तेरा कल्याण या तो पार्वती करेगी या तो जानकी करेगी। और दो नाम जोड़े, तेरी दादी और तेरी माँ, जिसको हम बा बोलते थे। फिर उस राह में कोई भी माँ तुझे मिल जायेगी। इसलिए बेटा, 'रामचरित मानस' के छात्रों को 'जानकी मंगल' और 'पार्वती मंगल' बहुत पढ़ना चाहिए। क्योंकि मंगल बिना जानकी, बिना पार्वती हो ही नहीं सकता। तब ये छंद पढ़ाया उसी समय की 'पार्वती मंगल' की ये चार पंक्ति -

घर घाल चालक कलह प्रिय कहियत परम परमारथी।

जब महारानी मैना ने शंकर का रुद्र रूप देखा, जब बाबा ब्याहने आये तब डर गई, बेहोश हो गई और उसको सखियां निज मंदिर में ले गई। जब जागी तो उमा को गोद में लेकर रो पड़ी कि नारद का मैंने क्या बिगाडा कि तुझे ऐसे वर के लिए तप करवाया? ये विधाता ने क्या किया कि तुझे इतना रूप दिया और ये तेरे वर को इतना बावरा जैसा बनाया! जो फल कल्पतरु को लगना चाहिए वो बबूल को लग रहा है! उमा, मैं तुम्हें लेकर आपघात करूंगी, पर्वत से गिरूंगी, जल में समा जाउंगी या आग में जल जाउंगी। कठिनाईयां कठोर शब्द बोलने के लिए आदमी को बाध्य कर देती है। अच्छा-बुरा का विवेक आदमी गंवा देता है। परिस्थिति कुछ बिलग परिणाम

लाने लगे तब जनक जैसे महाज्ञानी भी विचलित 'मानस' में हुए हैं। परिस्थितियां आदमी की चालक है। तो नारद के प्रति जो मैना बोली वो 'पार्वती मंगल' में लिखा है। स्वारथ नामक रथ के ये सात मुनि स्वारथी है। उसने भी बखेडा कर दिया! मेरी उमा, उमा को अंक में उठाकर हृदय लगाया। संत की कविता ऋचा होती है।

उर लाई उमहि अनेक बिधि।
जलपति जननी दु:ख मानकी।

अब इस बखेडे में कौन समाधान करे? और नगाधिराज हिमालय आये। 'न नारद को दोष दो, न ऋषियों को दोष। महारानी, मेरे महादेव की महिमा अगम है। वेद के लिए भी सुगम नहीं है।'

तो मुझे इतना कहना है मेरे भाई-बहन, नारद देव नहीं है। जो स्वार्थी है वो देव है। नारद देवर्षि है। इसलिए वो स्वार्थी नहीं है। निरंतर भगवान की कथा गाते हैं नारद। संगीतज्ञ है; धर्मज्ञ है नारद; वेदांतज्ञ है नारद। वो ही नारद के बारे में 'मानस' में पढ़ते हैं, विश्वमोहिनी से ब्याह करने के लिए विष्णु भगवान से रूप मांगता है, मेरा हित इसीमें होगा। तब विष्णु भगवान ने कहा, मैं किसी का हित नहीं करता, मैं परमहित करता हूं। शादी में किसका हित! नारद चाहते थे विश्वमोहिनी को मैं ब्याहूं उसमें मेरा हित होगा। और मेरा हित हरि के समान कोई नहीं कर पाता, तब प्रभु ने कहा था-

जेहि बिधि होई परम हित ।

नारद, मैं हित नहीं, परमहित करता हूं। एक वस्तु ध्यान देना, बुद्धपुरुष, परमतत्त्व, सद्गुरु आप जिसको मानते हो वो हमारा हित नहीं करता, हमारा परमहित करता है। हम हित की सोचते हैं। हम अपने-अपने हेतुओं के बारे में सोचते हैं। हेत के बारे में कभी सोचते ही नहीं। ये मंत्रात्मक सूत्र है। मानव जीवन के लिए बहुत मार्गदर्शक है कि परमात्मा परमहित करता है। नारदजी तत्त्वत: परम परमारथी है, लेकिन हमारी नासमझी कभी-कभी बुद्धजनों को भी स्वार्थी का सर्टिफिकेट दे देती हैं।

तो, लक्ष्मणजी ने गुहराज को कहा, राम ब्रह्म है और राम परमारथरूप है। शायद गुह ऐसा प्रश्न करे कि राम यदि ब्रह्म है, ये परमारथरूप है, तो उसका ब्रह्मपना और परमारथपना की कुछ विगत दीजिए। तो रामानुज ने कहा -

अबिगत अलख अनादि अनूपा।

स्वामी रामसुखदासजी, पूजनीय शरणानंदजी महाराजजी, दोनों की किताबों में मैंने एक जैसा सूत्र पढ़ा है कि ज्ञान में पहले जानना होता है, फिर मानना होता है। और भक्ति में पहले मानना होता है, फ़िर जानना होता है। जिसको प्रेममारग में जाना है उसको पहले मान लेना पड़ता है। प्रेम सद्गुरु बनकर जना देगा। और जिसको ज्ञानमारग की यात्रा करनी है उसको जानना पड़ेगा। वो तो जिज्ञासा करता रहेगा। ब्रह्म क्या, ब्रह्मतत्त्व क्या? लक्ष्मणजी ठीक शब्द यूझ करते हैं, 'अबिगत अलख अनादि अनूपा।' गुह, मानना शुरू कर दे। मैंने भी पहले माना, फिर जाना है। मैंने राम को कह दिया था, मैं माँ को नहीं मानता, बाप को नहीं मानता, गुरु को नहीं मानता। मेरा सबकुछ तुम हो। जानने में बहुत समय जाता है। इसलिए जगद्गुरु शंकराचार्य ने कहा, 'भजगोविंदम्।'

मेरे युवान भाई-बहन, पहले से जाग्रत हो जाओ। भक्ति में मान लो। थोड़ा धोखा हो जाय तो माया ने इतना बड़ा धोखा दिया है, फिर छोटे-बड़े धोखे को मारो गोली! कितना जनाया अर्जुन को कृष्ण ने कोई कमी नहीं बर्ती! अपनेआप को पूरा का पूरा लूटा दिया। फ़िर भी अर्जुन कहता है, मैं डामाडौल हूं। तो कहा, अब एक काम कर, 'मामेकं शरणं व्रज।' जानने में समय चला जाता है। और जानकारी इतनी बिखरी हुई पड़ी है कि उसको जानूं तो ये रह जाता! ये जानूं तो वो रह जाता!

कृष्णमूर्ति के पास एक बड़ी उम्रवाली, बडी रीच, बहुत पढ़ी-लिखी युवती गई। कृष्णमूर्ति के पास जाकर वो कहती है कि मैंने मेरा सब दायित्व पूरा किया। मेरे बच्चों को पाला-पोषा, अच्छी स्कूलों में अच्छी डिग्रियां दिलवाई। सब शादीशुदा हो गए। इस समकालीन जगत में जो-जो होना चाहिए, मैंने पूरा कर्तव्य पूरा कर दिया, लेकिन आज इनमें से कोई बच्चा मेरी मानता नहीं, मेरी सुनता नहीं! बहुत देर तक वो बोलती रही। कृष्णमूर्ति सुनते रहे, कुछ बोले नहीं। कोई अपनी पीड़ा, शिकायतें, गुस्सा किसी के सामने पेश करे तो मुस्कुराते हुए धीरगंभीर चित्त से उसको सुन लेना भी परमार्थ है। हमारे गुजराती में एक पंक्ति है -

वातुं एनी सांभळीने आडुं नव जोजे रे ...
एने माथुं ए हलावी होंकारो देजे रे ...
आवकारो मीठो आपजे रे जी ...

किसी की वास्तविक पीड़ा को समझना वो भी कथाश्रवण है। परमारथ है सत्य का विस्तार, परमारथ है प्रेम का विस्तार और परमारथ है करुणा का विस्तार। इसलिए बीज है प्रेम, वटवृक्ष है परमारथ। बीज है सत्य, वटवृक्ष है परमारथ। बीज है करुणा, वटवृक्ष है परमारथ।

'हिन्दुस्तान' अखबारवाला एक भाई पूछ रहा था कि बापू, योग के बारे में जो कुछ हो रहा है कि कोई करे न करे आदि-आदि। मैंने कहा, मैं व्यासपीठ से जुड़ा हूं, राजनैतिक चर्चा का मेरा लेना-देना नहीं है। मैंने कहा, एक बात समझो, मलेरिया ताव हिन्दु होता है कि मुसलमान? रोग ना हिन्दु होता है ना मुसलमान। तो योग क्यों हिन्दु-मुसलमान हो? योग सबका होता है। इसको क्यों बांटे? मेरे गोस्वामीजी ने लिखा कि सूरज एक है और एक कोटि घडे में गंगाजल भरके रख दो, एक ही सूरज कोटि घडे में दिखाई देगा। 'एकोऽहम् बहुस्याम्।' वेद सब ब्रह्ममय कहते हैं। तुलसी 'सीय राममय सब जग जानी।' कहते हैं। तो रोग न हिन्दु, न मुसलमान है। योग क्यों? तत्त्वत: मूल में तो 'एकम् सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।'

तो शायद निषाद पति गुह आचार्यचरण रामानुज लक्ष्मणजी से पूछे कि राम ब्रह्म है, परमारथ रूप है। तो हम गंवार को कुछ उसके बारे में थोड़ी विगत दो। बोले, वो अबिगत है। तू मानेगा प्रेम से; ये प्रेम तेरा गुरु बनेगा, तुझे जना देगा। अलख, स्थूल रूप में लख नहीं पाओगे। अनादि है।

आदि अनंत को जासु न पावा।
मति अनुमान निगम अस गावा।।

नीति, प्रीति, परमारथ और स्वारथ यथार्थरूप में राम के बिना कोई नहीं जानता।

थोड़ा कथा का क्रम। कोई जन्मेगा तभी, जब पहले किसी का ब्याह हो। इसलिए याज्ञवल्क्य भरद्वाजजी के सामने पहले शिव-पार्वती का विवाह कर देते हैं। श्रद्धा और विश्वास का विवाह न हो तब तक हमारे जीवन में रामतत्त्व प्रकट नहीं होता है।

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धा: स्वान्त:स्थमीश्वरम्।।

शिव और पार्वती ब्याहकर कैलास पर आते हैं। फिर उन दोनों के आध्यात्मिक मिलन से, एक शुभ संवाद से राम की कथा, रामतत्त्व की चर्चा प्रकट हुई। दक्षकन्या के रूप में ये बुद्धि है सती। ये बुद्धि जल गई, दीक्षित हो गई और हिमालय के घर श्रद्धा के रूप में प्रकट हुई। चेतना की बहिर्यात्रा को बुद्धि कहते हैं। चेतना की आंतर्यात्रा को श्रद्धा कहते हैं। मेरा ऐसा गुरुकृपा से समझना है। ये मेरी व्यक्तिगत निष्ठा है। भगवान शंकर विश्वास के प्रतीक है। हरिनाम जपने बैठ गए। सती राम की परीक्षा करने गई। पकड़ी गई। शिव के पास आकर झूठ बोली। अंतर्यामी शिव जान गए और खुद ने निर्णय नहीं लिया, अंदर हरि को स्मरण किया। अंदर से राम की प्रेरणा हुई और शिव ने निर्णय किया कि-

एहिं तन सतिहि भेट मोहि नाहीं।।

अकेली सती सत्ताशी हजार साल दु:खी है। शिव कैलास अनुसंधान करते अखंड समाधि में लीन हुए। इतने सालों के बाद शिव जागे और 'राम राम' बोले। सती शिव के पास गई। शिव के चरण में सती ने वंदन किया। ये वो सती है जिसने कुंभज को प्रणाम नहीं किया। कथा में बैठी लेकिन कथा को आदर नहीं दिया। ये वो सती है जिसने राम को प्रणाम नहीं किया। कसौटी करने गई तब राम ने उसको प्रणाम किया। सत्ताशी हजार सालों का वियोगजन्य दु:ख सती को विनम्र कर देता है। कभी-कभी विमुखों को भगवान कृपा के कारण सन्मुख कर देता है। शिव रसप्रद कथा सुनाने लगे। इतने में दक्षयज्ञ की कथा आई। देवगण आकाश मार्ग जा रहे थे। सती का ध्यान गया। शिव ने कहा, आपके पिता एक यज्ञ कर रहे हैं। वो बदला करने के लिए यज्ञ कर रहे हैं। सती बोली, आप न आओ, कोई बात नहीं। पिता के घर यज्ञ है, मैं जाऊं? आपकी आज्ञा हो तो जाऊं। सती न मानी, शिव ने गर्भित रूप में कह दिया।

सती पिता के घर आती है। जिसका शिव रुठता है उसका पूरा जगत रुठ जाता है। किसी ने बुलाई नहीं। एक माँ प्रेम से मिली। यज्ञशाला में कहीं विष्णु, शिव, ब्रह्माजी का स्थान तक नहीं देखा! यज्ञमंडप में खड़ी होकर उग्र स्वर में देवताओं और ऋषिमुनियों को संबोधन किया, हे देवतागण, मुनिश्वरों इस यज्ञ में जिन्होंने शिव की निंदा की और जिन्होंने शिव की निंदा सुनी उस सबको फल प्राप्त होगा। सती ने योगाग्नि में अपने देह को जलाकर भस्म कर दिया। हाहाकार हो गया! शिवगणों ने यज्ञ विध्वंश शुरू कर दिया। शिव को खबर मिली। वीरभद्र को भेज दिया। यज्ञ असफल हुआ। दक्ष की दुर्गति हुई। सती जलते समय ब्रह्म से मांग करती है कि जहां से जन्मूं स्त्री के रूप में जन्मूं और जनम-जनम मुझे शिव ही पति के रूप में मिले। हिमालय के घर कन्या के रूप में पार्वती आई है। हिमालय ने उत्सव मनाया। बहुत समृद्धि बढ़ने लगी। हमारे जीवन में श्रद्धा का जन्म होता है तो संतगणों को बुलाना नहीं पड़ता, वो अपने आप आने लगते हैं। चाहिए श्रद्धा। हिमालय और महाराणी मैना ने अपनी पार्वती को नारद के चरण में प्रणाम करवाया, 'आप मेरी बेटी का नामकरण करो और भविष्य का कुछ संकेत करो।' देवर्षि ने कहा, 'आपकी बेटी के कई नाम है।' 'नाम उमा अंबिका भवानी।' 'उसका दिव्य चरित्र माता-पिता को दिव्य कीर्ति प्राप्त करेगा। पातिव्रत्य धर्म की आचार्या मानी जायेगी।' 'हमारी बेटी को वर कैसा मिलेगा?'

अगुन अमान मातु पितु हीना।
उदासीन सब संसय छीना।।

एक विश्वास के ये सभी लक्षण है। विश्वास अगुन होता है, गुणातीत होता है। विश्वास किसकी संतान? अजन्मा है ये। विश्वास उदासीन है। संशयमुक्त अवस्था का नाम ही विश्वास है। दिखने में अमंगल लगेगा, लेकिन मंगल का भवन होगा। पार्वती समझ गई, नारदबाबा ने मेरे पति के बारे में जो लक्षण बताये वो महादेव के सिवा किसी के पास नहीं है। उसके बाद नारद ने कहा, तुम्हारी बेटी तप करे। उनको शिव प्राप्त होगा। पार्वती तप करने जाती है। तप की फलश्रुति पाती है। भगवान शंकर को रामजी आदेश देते हैं, तुम शादी करो।

ताड़कासुर नामक राक्षस से देवता पीड़ित हुए। ब्रह्मा ने कहा, शंकर का ब्याह हो तो उसका बेटा ही ताडकासुर को मार सकता है। देवगण आये और प्रशंसा करते हैं। शिव ने आने का कारण पूछा। ब्रह्मा ने कहा, महाराज, आप ब्याहो। सबकी यही इच्छा है। हमारी खुशी के लिए आप ब्याहो। शिव ने कहा, मेरे ठाकुर ने आदेश दिया है। तुरंत हां बोली। जटा का मुकट बनाया। आभूषण में छोटे-बड़े सर्प लगाये और भस्म लगायी। मृगचर्म और नंदी पर त्रिशूल लेके बाबा तैयार हो गए। देवताओं भी तैयार होकर आ गए। भूत-प्रेत सब बाबा की बारात में इकठ्ठे हो गए। सब व्यंग-विनोद करने लगे। दुनियाभर के स्मशान से भूत-प्रेत आये। कोई नाच रहे हैं, कोई गा रहे हैं!

बाबा आये भवन के द्वार पर। महारानी मैना आरती सजाकर आई। आरती करने गई और विकटरूप देखते ही आरती की थाली गिर गई और मैना बेहोश हो गई! सप्तऋषि, नारद, हिमघर आए। मैना को समझाया, ये तेरी पुत्री है ये तेरा भाग्य है, बाकी ये जगदंबा है। ये पराम्बा है। घर के अंदर शिवतत्त्व आ जाय, शक्तितत्त्व आ जाय, लेकिन नारद जैसा समझाये ना तब तक हमें पहचानें होती ही नहीं।

लोकरीति और वेदरीति से विवाह संपन्न किया। भगवान शिव ने पार्वती का पाणिग्रहण किया। आकाश से पुष्पवृष्टि हुई। नगाधिराज हिमालय, महारानी मैना हिमाचल परिवार सजल नेत्र अपनी बेटी को बिदा देते हैं। शिव-भवानी कैलास पधारें। सभी देवताओं ने मंगलस्तोत्र गायन किया और अपने लोक में प्रवेश किया। समय हुआ। षड्मुख कार्तिकेय का जनम हुआ, जिसने ताड़कासुर का निर्वाण किया। उसके बाद एक दिन भगवान शिव विशेष प्रसन्नचित्त कैलास के वेदविदित वटवृक्ष की छाया में सहज आसन में विराजित है। पार्वती योग्य अवसर देखकर आती है और नव प्रश्न पूछती है और नव प्रश्न के उत्तर में महादेव नव दिन की रामकथा गाते हैं।

एक वस्तु ध्यान देना, बुद्धपुरुष, परमतत्त्व, सद्गुरु आप जिसको मानते हो वो हमारा हित नहीं करता, हमारा परमहित करता है। हम हित की सोचते हैं। हम अपने-अपने हेतुओं के बारे में सोचते हैं। हेत के बारे में कभी सोचते ही नहीं। ये मंत्रात्मक सूत्र है। मानव जीवन के लिए बहुत मार्गदर्शक है कि परमात्मा परमहित करता है। नारदजी तत्त्वत: परम परमारथी है, लेकिन हमारी नासमझी कभी-कभी बुद्धजनों को भी स्वार्थी का सर्टिफिकेट दे देती हैं!

प्रेम बीज है, परमारथ फूल है

मानस-परमारथ : ५

कल हम देख रहे थे कि परमारथ यानी परमार्थ, परमारथवादी और परमारथी। 'रामचरित मानस' अंतर्गत परमारथ जो तुलसी का दर्शन है उसके सहारे हम कुछ डगर आगे बढ़ने की प्रामाणिक कोशिश करें। ब्रिटन के एक बहुत बड़े बुद्धिमान विद्वान ने ऐसा अभिप्राय दिया 'रामचरित मानस' को पढ़कर कि पचीस सौ साल पहले भगवान बुद्ध के बाद यदि भारत की भूमि पर कोई उसकी कमी पूरी करने आया है तो ये गोस्वामी तुलसीदास है। आज़ाद भारत के दूसरे महामहिम राष्ट्रपति परम दार्शनिक महापुरुष सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, वो निरंतर 'रामचरित मानस' का पाठ करते थे। ये मैं इसलिए कह रहा हूं कि कल एक पढ़े-लिखे आदरणीय ने पूछा था कि आप तुलसीजी को इतना महिमावंत बताते रहे। अच्छा लगता है, लेकिन सही में वो है? उसके बारे में तो कहा जाता है कि वो तो लकीर के फकीर थे! बाप, तुलसीदर्शन के आधार पर हम चल रहे इसलिए जरा भी अहोभाव और अधोभाव से मुक्त होकर गुरुकृपा से मैं आप-से बातें कर रहा हूं। मैं तो इतना ही कहूंगा कि तुलसी को पूरा समझना मुश्किल है। तुलसी तुलसी है।

मैं आदेश नहीं देता, न किसी को संकल्प कराता हूं। केवल आप से बातें जरूर करूं। आज से अधिक मास का आरंभ हो रहा है। जिसको पुरुषोत्तम मास कहते हैं। हो सके तो 'मानस' का अधिक पाठ करना। जो तुलसी की उपलब्धि है वो हमारी भी उपलब्धि हो सकती है।

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।

यदि परम विश्राम चाहते हैं, तो तुलसी को सुनो, पढ़ो, गाओ। 'मानस-परमारथ' में एक है परमारथपथ। दूसरा है परमारथगाथा। ये एक-एक सब्जेक्ट बन जाय ऐसा है। तीसरा है परमारथवचन। चौथा है परमारथवाद। परमारथ एक पथ है। 'मानस' में परमारथ पथ का उल्लेख है-

तापस सम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना।।

तो, परमारथपथ अथवा तो परमारथपंथ, मार्ग। यहां परमारथ कोई संप्रदाय नहीं है। क्योंकि 'पंथ' शब्द लगता है तो थोडी संकीर्णता आ जाती है। यद्यपि 'पथ' शब्द है। लेकिन मैं कृष्णमूर्ति को याद करूं तो मार्गमुक्त मार्ग है, जो कृष्णमूर्ति कहा करते थे। इसलिए परमारथ और प्रेम सापेक्ष है। प्रेम बीज है, परमारथ फूल है। लेकिन प्रेम कोई संप्रदाय है? ये तो मार्गमुक्त मार्ग है। आंसू का कोई संप्रदाय हो सकता है? लाफिंग क्लब हो सकती है, आंसूओं की कोई क्लब हो सकती है? ब्लड बैंक हो सकती है, आंसूओं की बेंक हो सकती है? अश्रु बेंक तो प्रेमियों का अपना खजाना है। जो देना जानती है। व्याजमुक्त देना जानती है। व्रज की गोपांगना कहती है -

निशदिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत बारिश रीतु हम पर।
जब से श्याम सिधाये।

लेकिन ध्यान देना, रोना साधन भी नहीं है। जल्दी रो लो! चलो, एक घंटा रो लो! उसका टाईम-टेबल नहीं होता! कभी रात का सन्नाटा रुलायेगा। कभी कोई याद आंखें भर देगी।

प्लीज़, मेरी व्यासपीठ के पास भ्रम लेकर न आना, आप निराश हो सकते हैं। व्यासपीठ स्वर्ग देने में शायद असफल हो जाय। मेरा तो अनुभव कहता है, व्यासपीठ आपको प्रेम के आंसू देगी। एक मार्गमुक्त मार्ग प्रदान करेगी। प्रेम और परमारथ जो सापेक्ष है, मूल और फूल की तरह है। वो प्रदान करेगी। मेरी व्यासपीठ का स्वर्ग प्रेम है। मेरी व्यासपीठ का स्वर्ग सत्य है। मेरी व्यासपीठ का स्वर्ग करुणा है। और एक बार इस प्रेमपंथ का जिसने अनुभव किया वो बहुत रोया। तो, परमारथ कोई ग्रूप नहीं है। परमारथ कोई एक मार्ग नहीं है। पंथ, संप्रदाय नहीं है; मार्गमुक्त मार्ग है। गोस्वामीजी 'परमारथ पथ'शब्द का प्रयोग करते हैं-

जे नहिं साधुसंग अनुरागे ।
परमारथ पथ बिमुख अभागे ।।

कल एक अखबार के संवाददाता पूछता था मुझे कि बापू, रामकथा आज के समय में प्रासंगिक है? मैंने कहा, रामकथा तो मेरा माध्यम है। मैं इसी शास्त्र को लिए चलता हूं। दीक्षित दनकौरी का शे'र है -

शायरी तो फ़कत बहाना है।
अस्ल मक़सद तुझे रिझाना है।

मैंने कहा, सत्संग प्रासंगिक है। 'सत्संग' शब्द को आदमी ने केवल धार्मिक परिप्रेक्ष्य में देखा। सत्संग है विवेकदर्पण। और दर्पण हमें जो है, साफ-साफ दिखाये देगा। ये तो कृष्ण ही कह सकता है कि ऐसी अवस्था भक्ति के पारमार्थिक रूप में जहां शुभ भी छूट जाता है, अशुभ भी छूट जाता है। मैं तो युवान भाई-बहनों को कहता हूं, मुझे साल में नव दिन दो, मैं तुमको नवजीवन दूंगा। करो सदा सतसंग।

हमारा विवेक खो गया है। इसलिए जल क्या है, मिश्रण क्या है, उसको हम बिलग नहीं कर पाए। हम उलझे हुए हैं, जिसको पतंजलि भगवान अविद्या कहते हैं। ये कलेश है। सबसे पहला कलेश है अविद्या, पतंजलि योगसूत्र में। अविद्या का सीधासादा अर्थ है सत्य को असत्य मानना, असत्य को सत्य मानना। निर्णय कौन करेगा?

बिनु सतसंग बिबेक न होई।

विवेक के लिए चाहिए सत्संग। हमारा ये जीवनदर्पण है। हम बिलग नहीं करते। शत्रु मित्र लगता है, मित्र शत्रु लगता है। या तो दोनों इतने हिलमिल गए हैं कि हंसवृत्ति के बिना क्षीर-नीर का भेद करना मुश्किल हो गया हम जैसों के लिए।

तो, सत्संग जरूरी है, क्योंकि ये हमारा विवेकदर्पण है। शिव मांगते हैं, सदा सत्संग। सत्संग को हमने एक फ्रेम में सीमित कर दिया है! आप कोई अच्छी कविता सुनो, अच्छी गज़ल सुनो, अच्छा साहित्य पढ़ो, वो भी सत्संग है। प्रेरणा दे ऐसा मंचन आप देखो तो भी सत्संग है। अच्छा संग करो वो सत्संग है। हमारे स्वामी शरणानंदजी कहा करते हैं, मौन सत्संग है। मुझे कहना है, सत्संग करना है, तो चार से करो। एक अपने मन से करो। कभी अपने-अपने मन से गुफ्तगू की? मेरे मध्यकालीन संतों ने मन से गूफ्तगू की।

रे मन मुरख जनम गंवायो।

अपने मन से संवाद हो ये मन का सत्संग है। तुलसी इसलिए तो अपने मन से बात करते हैं। 'राम भजि सुनु सठ मना।' गोस्वामीजी ने एक संकल्प छोड़ा है, मैं इसलिए रामकथा लिख रहा हूं कि 'मोरे मन प्रबोध जेहि होई।' मेरे मन को बोध हो। मन खराब नहीं है। 'भगवद्गीता' में परमात्मा की इन्द्रियों में मन ये मेरी विभूति है, ऐसा भगवान ने कहा। मन को गाली देना हरि को गाली देने बराबर है। उनकी विभूति का अनादर है।

मन से सत्संग करो और मेरे भाई-बहन, थोड़ा तन से भी सत्संग करो। तन बोले, तुम सुनो। शरीर को बोलने दो। शरीर को बोलने का मौका दोगे तो शरीर आपको कहेगा कि मैं छोटा था तब कितनी सुंदर चमड़ी

थी मेरी! दंत पंक्ति मेरी कैसी थी! देख युवक, अब मैं कैसा होता जा रहा हूं! ये शरीर बड़ा शास्त्र है। आसक्त न हो जाय इसलिए महापुरुषों ने सावचेत किया। लेकिन शरीर हमें कहेगा, तू शरीर को साधन समझकर उसका सदुपयोग कर, क्योंकि तुझे ये मानव शरीर बहुत बड़ी साधना के बाद मिला है।

तो, मन-सत्संग, शरीर-सत्संग जरूरी है। रोज थोड़ा धन-सत्संग करो। धन संग्रह का नहीं कह रहा हूं। धन से बातें करो कि धन, मैंने तुझे प्राप्त किया सुख पाने के लिए, लेकिन मेरी शांति कहां चली गई? बंदे, जरा बोल, मैंने तुझे आदर दिया, मेहमान बनाया है। धन, मेरी शांति कहां चली गई? धन-सत्संग आवश्यक है। चौथा सत्संग का केन्द्रबिंदु है किसी बुद्धपुरुष के वचन। मन, तन, धन और किसी पहुंचे हुए फकीर के बोल। कभी पचीस सौ साल पहले बुद्ध क्या बोले थे, उनके कोई चुने हुए वचन पढ़ो। उससे गुफ्तगू करो। बुद्धपुरुष के वचनों का सत्संग; सद्गुरु के वचनों का सत्संग।

कल मैं यहां नौका में आया तो एक युवक बिलकुल काली बिंदी लगाये, शायद निम्बार्की था, सीढ़ी पर अपना भाव प्रदर्शित करने लगा। आंखें डबडबाई थी। बोले, मैं सेवा में रहना चाहता हूं, मुझे रख लो। युवानों का समर्पण कम नहीं है साहब! आपकी सेवा में रख लो। मैंने कहा, मेरी तो कोई सेवा ही नहीं। मेरे पास कोई व्यवस्था नहीं। मैं अकेला घूमता हूं। तू कथा में आ, मुश्किल हो तो कहे। मेरे पास कोई कायम सेवा में नहीं है। मैं तो अकेला हूं। न तो मैं किसी का गुरु हूं, न मेरा कोई ग्रूप है। तो, मैंने समझाया। मुझे लगा, उसे तसल्ली नहीं हुई है। मेरा कोई शिष्य नहीं। मेरे लाखों श्रोता है। मैं और मेरी 'रामायण' बस। युवक, व्यासपीठ के वचन से महोब्बत कर। हमारी गंगासती ने गाया-

सद्गुरु वचनोनां थाव अधिकारी, पानबाई।

गंगासती एक प्रबुद्धमहिला, वो अपनी आश्रित पानबाई से कहती है कि अपने गुरु के वचन की अधिकारी बन। 'मानस' में लिखा है -

सद्गुरु बैद बचन बिस्वासा ।
संजम यह न बिषय कै आसा ।।

वचन संग-सत्संग है। ये बोलेंगे, आपको सुनने की तैयारी हो।

जे नहिं साधुसंग अनुरागे।
परमारथ पथ बिमुख अभागे।।

जिन्होंने मानसिक स्तर से साधुसंग नहीं किया वो परमारथ पथ विमुख हैं, अभागे हैं। बाप, बुद्धपुरुष के वचन का संग भी सत्संग है। मुझे इतनी प्रसन्नता तब होती है जब मैं मेरे दादाजी के वचन को याद करता हूं। आप भी आपकी श्रद्धा स्वाभाविक लगी हो, आपने परखी हो कि जिसकी आंख में वासना नहीं, उपासना है, जिसकी जुबां में प्रिय सत्य है, जिसका हृदय अभिमान और दंभ से मुक्त है, ऐसे कोई प्रेमी का संग करो।

तो, एक तो परमारथपथ, जिसको मेरी व्यासपीठ मार्गमुक्त मार्ग कहती है। दूसरा है परमारथगाथा।

कहि जग गति मायिक मुनिनाथा ।
कहे कछुक परमारथ गाथा ।।
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे ।
कहि परमारथ बचन सुदेसे ।।

मुनि ने भरतजी को बहुत प्रकार से उपदेश दिया। परमारथ के वचनों से उपदेश दिया। सुदेशे, देश-काल को ध्यान में रखकर ऐसे परमारथ के वचन मुनि ने भरत को कहा। तो परमारथवचन, परमारथपथ, परमारथगाथा और परमारथवाद; चार में उसका दर्शन। तुलसी के दर्शन में यात्रिक को, पथिक को किसी भी पथ पर चलना है तो इनमें तीन मुश्किल होती है। एक श्रम, मारग पर चलने का श्रम होता है। फिर वहां से दो-चार ओर मार्ग निकलते हो तो दूसरा पथ का संकट है भ्रम कि अब किस मारग पर जाये। और तीसरा है दु:ख कि इतना चले फिर भी मंज़िल नहीं आयी! ऐसा 'मानस' में लिखा है कि कोई भी पथिक के लिए श्रम, भ्रम और दु:ख।

नहिं मग श्रमु भ्रमु दु:ख मन मोरें ।

जब सीयाजु को बहुत बार समझाया गया कि आप वन में मत आओ। वन में पैदल चलना पड़ेगा। पंथ कंटकमय होता है। पंथ में कई कठिनाईयां है। आप मत आओ। भरद्वाजजी से राम ने मारग पूछा कि हम किस मारग जाये तो भरद्वाजजी ने कहा कि आपके लिए तो सब मार्ग सुगम है और मैं आपको मार्ग बतानेवाला कौन? भगवान ने पूछा, आप क्या कहना चाहते हैं? हम तो ऋषिमुनियों के सेवक है। बोले, ये तो आपकी उदारता है, लेकिन एक तो आप ब्रह्म है। ब्रह्म को हम क्या मार्ग दिखाये? रही सीताजी, ये आपकी भी बात नहीं माने तो मेरी खाक माने! और ये लक्ष्मण किसी की माननेवाले है? ये तुम्हारे कदमों के पीछे चलनेवाला है। जो परमात्मा ही जिसका मारग हो उसको मारग दिखाने की जरूरत भी क्या? तो, प्रभु जानकीजी को समझाते हैं कि रास्ते में ये होगा। तो जानकीजी ने कहा, प्रभु, रास्ते में मुझे जरा भी श्रम नहीं होगा। मैं वादा करती हूं। रामजी ने कहा, क्या आप चौदह साल परिभ्रमण कर सकेगी? कैसे? मैंने पुष्पवाटिका में आपको पुष्प चुनते देखा तब सुबह का समय था और शरदकालीन करीब-करीब ऋतु थी। फूल तोड़ना कोई मेहनत का काम नहीं, लेकिन जनकपुर की पुष्पवाटिका में जब पहलीबार आपका दर्शन किया तब फूल तोड़ने में आपको श्रम हुआ था। पसीने के बिंदु आपके चेहरे पे मैंने देखा, तब से मैंने देखा इनके कदम पर चलना आसान है, क्योंकि जो हमारा श्रम खुद ले लेगा, चलनेवाले को क्या खाक श्रम लगेगा! मैं तो तुम्हारे पीछे चलनेवाली हूं। आप ब्रह्म है। जहां ब्रह्म है, उसके कदम पर चलने में भ्रम हो ही नहीं सकता। तो, भ्रम का भी छेद उड़ जाता है। और दस मिल चल दिए। गांव नहीं आया उसका दु:ख शुरू हो जाता है। तो, मुझे दु:ख भी नहीं होता क्योंकि आप सुख स्वरूप है। मैं साक्षात् सुख स्वरूप हरि के पीछे चलूं तो मुझे दु:ख काहे का?

चारों परमारथ-पथ जो पथमुक्त पथ है, जिस पर चलने से साधक को न श्रम लगेगा, न भ्रम पैदा होगा, न दु:ख का अनुभव होगा। वो नितांत अभागे है, जिसने साधुसंग प्रति अनुराग पैदा नहीं किया। बहुत अर्थ में उसका अर्थ कर सकते हैं। तो बाप, परमारथ के पथ; परमारथगाथा; तो कौन-सी गाथा सुनाई होगी ऋषि ने जिसको तुलसी परमारथ गाथा कहते हैं। कल चर्चा करेंगे।

भगवान शंकर ब्याहके बाद विविध विहार करते हैं। कार्तिकेय का जन्म और ताडकासुर का निर्वाण। उसके बाद कैलास के वेदविदित वटवृक्ष के नीचे महादेव विराजमान है सहज आसन पर। 'उत्तमा सहजावस्था मध्यमा ध्यानधारणा।' गौर वर्ण, भुज बड़े प्रलंब है, विशाल है। विशाल बाहें कहके उदारता का संकेत है। लाल ताजे कमल के समान चरणारविंद है और नख का जो प्रकाश है वो स्मरण करनेवाले आश्रितों के सब अंधकार को मिटानेवाले हैं। भोलेनाथ के मस्तक पर जटा का मुकुट है। गंगधारा बह रही है। दृष्टिकोण असंग है। बाबा का कंठ विषपान के कारण नील है और बालचंद्र भाल में सोह रहा है।

कथा कहने से पूर्व यहां वक्ता के कुछ लक्षण दिखाये हैं। शिवरूप वक्ता वो है जिसका दृष्टिकोण 'नलिन विशाला' उसकी बाहों इतनी विशाल हो कि सबको वो स्वीकार लेता हो। शिवरूप वक्ता को विष पीना पड़ता है। महादेव ने ज़हर पीया। अंदर नहीं जाने दिया, वर्ना जल जाते और वमन करते तो जगत जल जाता। अपने कंठ में शोभा प्रदान करता है। लेकिन न बमन करे, और न अंदर उतारे। अपने कंठ की शोभा। कंठ में विष हो और आदमी बोलेगा तो ज़हर ही निकलना चाहिए। लेकिन शिवरूपी वक्ता का लक्षण ये है कि ज़हर तो कंठ में पीया है, लेकिन बोले तो 'हर्षि सुधा सम', वचन अमृत बोले।

आत्मा किसी की गंदी नहीं, वाणी गंदी हो सकती है। नज़र गंदी हो सकती है, कदम गंदगी की ओर जा सकता है। आत्मा किसीकी गंदी नहीं हो सकती। 'नीलकंठ लावन्यनिधि सोह बालबिधु भाल।' भोले बाबा लावण्यनिधि है, सुंदर लगते हैं। अपने भाल में बालचंद्र

सोह रहा है। वक्ता का लक्षण है, अपने को पूर्णचंद्र ना माने, दूज का चांद माने कि अभी मुझे बहुत आगे बढ़ना है। मैं पूर्ण हो गया, मेरे जैसा कोई वक्ता नहीं, ऐसा नहीं। दूज का चांद रहो। उसीमें ही वृद्धि के संकेत है। सोचा पार्वती ने कि आज बहुत बड़ा अवसर है। आज मेरे प्रभु बहुत प्रसन्न है। और गत जनम से जो मेरे मन में संशय है कि राम ब्रह्म है कि मनुष्य है। आज उसका खुलासा हो जाय, क्योंकि आज मेरे महादेव प्रसन्न है। पार्वती महादेव के पास आई। अपनी प्रिया को आदर देते वाम भाग में आसन दिया। स्वागत किया। पार्वती ने जिज्ञासा की है। भगवान शंकर बहुत राजी हुए। शिवजी ध्यानरस में डूब गए। भगवान महादेव का ध्यान जड़ नहीं है, रसमय है। मन को बहिर् मुख किया और भगवान के चरित्र को प्रसन्नता से वर्णन करना शुरू कर देते हैं। अपने इष्ट राम का स्मरण किया। पहला वाक्य जो महादेव के मुख से निकला, हे देवी, आप धन्य हो, धन्य हो। हिमालय की पुत्री होने के कारण अब मैं जो कहूं, स्थिरता से सुनियेगा।

पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा ।
सकल लोक जग पावनि गंगा।।

आपने ऐसी कथा पूछी देवी कि ये समस्त लोक को पवित्र करनेवाली गंगा है। कलियुग में भगवान की कथा आयोजन करने में जो निमित्त बन जाय उसको शंकर के मुख से दो बार का धन्यवाद का प्रेमपत्र प्राप्त होता है। जो भगवान की कथा में निमित्त बन जाते हैं इसलिए धन्यवाद। ब्रह्म अक्रिय है उसको कोई इन्द्रियों की जरूरत नहीं। ऐसा निराकार ब्रह्म, निर्गुण ब्रह्म क्यों नराकार हुआ? सगुण क्यों हुआ? व्यापक ने व्यक्ति का रूप क्यों लिया, उसके पांच कारण महादेव ने देवी को बताये। पहला कारण वैकुंठ के दो द्वारपाल जय-विजय की कथा; दूसरा कारण सतीवृंदा का शाप; तीसरा कारण नारद ने प्रभु को शाप दिया इसलिए श्री हरि को रामावतार लेना पड़ा; चौथा कारण मनु और शतरूपा की तपस्या। पांचवां कारण राजा प्रतापभानु को ब्राह्मणों ने शाप दिया इसलिए उसको मनुष्यरूप धारण करना पड़ा।

प्रतापभानु अगले जन्म में रावण हुआ। अरिमर्दन कुंभकर्ण हुआ। प्रतापभानु का एक प्रधानमंत्री था धर्मरुचि। वो दूसरे जन्म में दूसरी मात की कुख से विभीषण हुआ। निशिचर की कथा पहले कही, फिर सूर्यवंश की कथा। क्योंकि रात्रि पहले होती है, फिर सूर्योदय होता है। तीनों भाईयों ने कड़ी तपस्या की। दुर्गम वरदान प्राप्त किये। रावण वरदानों का दुरुपयोग करने लगा। पूरे जगत में भ्रष्टाचार व्याप्त कर दिया रावण ने! रावण के जुल्म के कारण पृथ्वी अकुला उठी। गाय का रूप लेकर ऋषिमुनि के पास जाकर रोने लगी। ऋषिमुनि भी लाचार थे। सब देवताओं के पास गए। देवताओं ने कहा, हमारे पुण्य खत्म हो गए, हमारे बश की बात नहीं। करे क्या? सब ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा ने कहा, तुम्हें जिसने बनाये हैं वो परमसर्जक के शरण में जाये। ब्रह्मा की अगवानी में समस्त अस्तित्व ने परमतत्त्व को पुकारा -

जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता।।

प्रभु को पुकारा गया। आकाशवाणी हुई, 'धैर्य धारण करो। कई कारण भी है और तत्त्वत: कोई कारण भी नहीं है। मैं अयोध्या में प्रकट होउंगा। मेरी आदिशक्ति भी प्रकट होगी।' सब देवगण राजी हुए। ब्रह्माजी ने सब देवताओं को कहा, हम वानर के रूप में धरती पर पहुंच जाय और परमात्मा के अवतारकार्य में अपना सहयोग दे।

त्रेतायुग; अवध का साम्राज्य; रघुकुल का शासन; वर्तमान शासक मनिरूप महाराज दशरथ बड़े कर्मयोगी है, ज्ञानी है। कौशल्या आदि रानियां है। जिसका आचरण पवित्र है। राजा को रानियां प्रिय है और रानियां अपने पवित्र आचरण से राजा को बहुत आदर करती है। दोनों मिलकर प्यार और आदर से अपने इष्टदेव की भक्ति करते हैं। सब प्रकार का सुख था, लेकिन एक बार दशरथजी को ग्लानि हुई है कि मुझे पुत्र नहीं है। रघुवंश मेरे से रुक जायेगा? मेरी पीड़ा किससे कहूं? सोचकर गुरुद्वार जाते हैं। दशरथजी सुख-दु:ख की लकड़ियां लेकर गए। नरसिंह मेहता ने गाया है -

सुख दु:ख मनमां न आणीये, घट साथे रे घडिया;
टाळ्यां ते कोईनां नव टळे, रघुनाथनां जडियां।

पचीस सौ साल पहले का तथागत ने कहा सत्य आज भी सत्य है कि दु:ख है, दु:ख के कारण है, दु:ख के हेतु है। तथागत का चार सत्य। हे तथागत, हमने आपसे पढ़े हैं, आपके वचनों को हम गुनगुनाते हैं। हम आपके होने के नाते कह सकते हैं कि तथागत, धरती पर सुख भी है, सुख के कारण भी है, हेतु भी है। तो, सुख-दु:ख समिध है। वशिष्ठजी ने कहा, राजन्, धैर्य धारण करो। चार पुत्रों के पिता हो जाओगे। नारी जैसे पति का सिंदुर भरती है वैसे साधक को चाहिए, अपने सुहाग को भरो गुरुचरणरज से। वे समस्त वैभव को वश कर लेते हैं। रज मिली, रजमात्र दु:ख नहीं रहा। यहां पुत्रप्राप्ति को भी यज्ञकर्म बताया है। शृंगि ऋषि आये। पुत्रकामेष्टि यज्ञ आरंभ हुआ। भगति सहित आहुतियां दी। प्रसाद का चरु-खीर लेकर यज्ञपुरुष बाहर आए। यज्ञ की खीर वशिष्ठजी के हाथ में देते हुए यज्ञपुरुष ने कहा, राजा को देना; अपनी रानियों को जथाजोग बांट दे। अवधपति ने आधा प्रसाद कौशल्याजी को, पा भाग कैकेयीजी को और पा भाग के दो भाग करके कौशल्या और कैकेयी के हाथों प्रसन्नतापूर्वक सुमित्राजी को दिया गया। इस प्रकार तीनों रानियां सगर्भा हुई। पंचाग अनुकूल हुआ। पूरा अस्तित्व हर्षित है। अयोध्या अहोभाव में डूबी है। त्रेतायुग, चैत्रमास, शुक्लपक्ष, नौमितिथि, भौमवार, मध्याह्न का सूरज, आराम और विश्राम का समय, अमृत बेला। सभी देवता ने विमानों से आकाश को संकुल कर दिया। गंधर्व गीत गाने लगे। पाताल के नाग, धरती के देवता, ऋषिमुनि गर्भस्तुति करने लगे।

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी।।

प्रभु प्रकट हुए। माँ कौशल्या ने दर्शन किया। माँ को ज्ञान हुआ। भगवान मुस्कुरा दिए। माँ ने मुंह फेर लिया, 'प्रभु, आप आये स्वागत, आप वचन चुक गये! आपने कहा था, पुत्र बनकर आउंगा। मुझे मनुष्य के रूप में हरि चाहिए।' भारत की एक माँ परमात्मा को मनुष्य कैसे हुआ जाय उसकी शिक्षा प्रदान करती है। भक्ति ईश्वर को अपनी गोद के अनुकूल बनाती है। प्रभु नवजात बालक की तरह छोटे हो गए। कौशल्या की गोद में भगवान बालरूप में रोने लगे। बालक की रोने की आवाज़ बाहर गई। रुदन की आवाज़ सुनकर ओर रानियां भ्रम के साथ दौड़ आई! आया है ब्रह्म, हुआ है भ्रम! महाराज दशरथजी ने सुना, पुत्रप्राप्ति हुई है। ब्रह्मानंद में डूब गए। भ्रम का निवारण गुरु बिना कौन करे? वशिष्ठजी ब्राह्मण देवता के साथ आये। निर्णय हुआ, राजन्, ये बालक ब्रह्म है। दशरथ परमानंद में डूब गए। महाराज ने कहा, उत्सव मनाईए। 'मानस-परमारथ' के प्रेमयज्ञ में आप सभी को रामजनम की बधाई।

परमारथ एक पथ है। परमारथपथ अथवा तो परमारथपंथ, मार्ग। यहां परमारथ कोई संप्रदाय नहीं है। क्योंकि 'पंथ' शब्द लगता है तो थोडी संकीर्णता आ जाती है। लेकिन मैं कृष्णमूर्ति को याद करूं तो मार्गमुक्त मार्ग है। परमारथ और प्रेम सापेक्ष है। प्रेम बीज है, परमारथ फूल है। लेकिन प्रेम कोई संप्रदाय है? ये तो मार्गमुक्त मार्ग है। आंसू का कोई संप्रदाय हो सकता है? लाफिंग क्लब हो सकती है, आंसूओं की कोई क्लब हो सकती है? ब्लड बैंक हो सकती है, आंसूओं की बेंक हो सकती है? अश्रु बेंक तो प्रेमियों का अपना खजाना है, जो देना जानती है; व्याजमुक्त देना जानती है।

कथा-दर्शन

- रामकथा समग्र जीवमात्र का भोजन है। इसमें सभी व्यंजन परोसे जा रहे हैं।
- व्यासपीठ आपको प्रेम के आंसू देगी। एक मार्गमुक्त मार्ग प्रदान करेगी।
- जिनके वचन विवेक, वैराग्य और भक्ति के रस से निकले हो उनको बुद्धपुरुष समझना।
- साधु कभी प्रभाव से नहीं पहचाना जाता, अपने स्वभाव से पहचाना जाता है।
- इक्कीसवीं सदी में धर्मपुरुष मुस्कुराता हुआ हो। हर एक पीठ मुस्कुराती हुई हो।
- हरिमारग प्रतीक्षा का मारग है, परीक्षा का नहीं।
- जिसको राम के चरण में प्रेम नहीं वो परमारथ पथिक नहीं।
- चेतना की बहिर्यात्रा को बुद्धि कहते हैं। चेतना की आंतर्यात्रा को श्रद्धा कहते हैं।
- किसी की वास्तविक पीड़ा को समझना वो भी कथाश्रवण है।
- हम हित की सोचते हैं; अपने-अपने हेतुओं के बारे में सोचते हैं; हेत के बारे में कभी सोचते ही नहीं।
- लाभ बहिर् होता है, शुभ भीतरी होता है।
- अद्वैत बेड़ियां नहीं बननी चाहिए, नुपूर बनना चाहिए।
- प्रेम उसको कहते हैं जो पवित्र हो; और शील उसको कहते हैं जो सच्चा हो।
- प्रेम वैरागी होता है। प्रेम रागी हो ही नहीं सकता।
- प्रेम जैसा तपस्वी कोई नहीं।
- आत्मा किसी की गंदी नहीं, वाणी गंदी हो सकती है।
- विषाद कभी-कभी विवेकशून्य बना देता है।
- जब तक आदमी को निजसुख नहीं मिलेगा, तब तक मन स्थिर नहीं होगा।

'मानस' अद्भुत शास्त्र है, अनुभूत शास्त्र है और अवधूत शास्त्र है

मानस-परमार्थ : ६

'मानस-परमारथ'; हम सात्त्विक-तात्त्विक संवाद कर रहे हैं। कल हमारी चर्चा रही परमारथ के बारे में कि परमारथपथ, परमारथवचन, परमारथवाद और परमारथगाथा। पंथ की समस्या है श्रम, भ्रम, दुःख। राम ब्रह्म है, परमारथरूप है, इसलिए जानकी परमारथ स्वरूप राम के कदमों पर चली, तो न तो उसको श्रम हुआ, न कोई भ्रम पैदा हुआ, न दुःख हुआ। हमारी यात्रा भी यदि विवेक के जागरण के बाद ऐसी हो तो हम भी इस मार्गमुक्त मार्ग पर आगे बढ़ सकते हैं।

कहि जग गति मायिक मुनिनाथा।
कहे कछुक परमारथ गाथा।।

मुनि ने, भगवान वशिष्ठजी ने जगत की गति का वर्णन किया। इस जगत की गति मायिक है। उसकी कुछ विशेष तात्त्विक चर्चा की। सीधा जगद्गुरु शंकराचार्य का सिद्धांत आ रहा है, 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या।' ये बात आ गई। जैसे ये सब मोहमूल है, परमारथ नहीं है। इस मायामय प्रपंच में भी कुछ परमारथगाथा सत्य है, क्योंकि ब्रह्म सत्य है। 'राम ब्रह्म परमारथ रूपा।' इन शब्दों को याद रखे। इस मायावी जगत में भी कुछ गाथायें पारमार्थिक है। और प्रश्न ये आता है कि कौन पारमार्थी गाथा है, जो वशिष्ठजी कहना चाहते हैं। पंक्ति में इतना ही कह दिया, 'कहे कछुक परमारथ गाथा।' अयोध्या के राज्यशासन में अयोध्या के राजपरिवार में एक परंपरा-सी रही और वो रामराज्य स्थापित होने के बाद भी अक्षुण्ण रही। वो परंपरा थी-

बेद पुरान बसिष्ट बखानहिं।
सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं।।

रघुकुल को सीमित मत बनाना। इसलिए शब्द है 'सूर्यवंश।' और सूर्यवंश में तो हम सब आ जाते हैं, जो सूरज की छाया में जीते हैं। हमारा जो परिवार है इनमें भी यही परंपरा होनी चाहिए कि रोज कुछ न कुछ परमारथ गाथाओं कोई सुनाये। तो बाप, अयोध्या में एक परंपरा-सी थी कि रोज वशिष्ठजी वेदपुराण की कथा सुनाते थे और राजपरिवार, प्रजाजन, संतगण सब बैठते थे और उसमें निरंतर परमारथगाथायें वर्णन की जाती थी।

एक ओर मायिक कथा प्रपंचों की चल रही है, इनमें से चुनकर परमारथगाथायें निकाली। जिन्होंने तत्त्वनिर्णय किया है जीवन में और जगत के लिए उन महापुरुषों ने जो अनुभूति थी वो कही। लेकिन विनोबाजी एक अर्वाचीन जगत के महापुरुष, इन्होंने कहा, ब्रह्म सत्य तो मानता हूं, लेकिन जगत मिथ्या नहीं, जगत स्फूर्ति। ये जगत परमात्मा का स्फुरण है। शास्त्रसंशोधन जरूरी है। 'श्रीमद् भागवतजी' में वक्ता के लक्षण करते हुए मुनि कहते हैं, 'वेद शास्त्र विशुद्धिकृत।' वक्ता समय-समय पर वेद-शास्त्र का विशेष रूप में संशोधन करे। समाज बदल जाय, काल बदल जाय तो संदर्भ बदलना पड़ेगा।

कल चर्चा करता था कि भगवान राम के काल में महाराज दशरथजी को पुत्र नहीं तो वशिष्ठजी ने उसमें कुछ सीधा हस्तक्षेप नहीं किया। ये गुरु है, लेकिन सीधे नहीं उतरे। पुत्रप्राप्ति राजा को हो इसलिए उसने शृंगिऋषि को बुलवाया और पुत्रकामयज्ञ करवाया। रामकाल के बाद आया महाभारतकाल। और वहां कुरु-पांडु की जो स्थिति है; राज्य चले कैसे, कोई चाहिए। और पुत्रों की जरूरत थी तब यहां व्यास सीधे उतरे। व्यास स्वयं इसी घटना में वरदान देते हैं। और पूरा 'महाभारत' फिर आगे बढ़ता है। हो सकता है काल आगे बढ़े और संशोधन हो। विज्ञान तो ओलरेडी संशोधन कर चुका है। देश का ऋषि इतना प्रामाणिक और इतना निर्दंभ है; इतना निर्भय है कि समय-समय पर शास्त्रसंशोधन करता रहा। तो, विनोबाजी का निवेदन, ब्रह्म सत्य है, लेकिन ये जगत परमात्मा का स्फुरण है। आगे का निवेदन गलत नहीं है, प्लीज़। ये गंगा के जो हिलोरे हैं, मैं कैसे मिथ्या कहूं?

'हनुमानचालीसा' करो भाई-बहन, तो ये पतंजलिवालें पांचे कलेशों से मुक्ति हो जायेगी। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। ब्रह्मविद्या को, ज्ञान को बहुत क्लिष्ट किया गया! यद्यपि है; निम्बू तो कठोर है, उपर छाल है, लेकिन जैसे माँ निम्बू का रस निकाल देती है और छाल-बीया निकाल दिया और रस पीला देती है। 'रामचरित मानस' क्या है? 'छओ सास्त्र सब ग्रंथन को रस।' वेद, उपनिषद, दर्शन, सांख्य, ब्रह्मसूत्र, 'भगवद्गीता' तमाम उपनिषद, 'महाभारत' आदि एक मिक्सचर में डालकर तुलसी ने छओ शास्त्र का रस निकाला। ये रस है और ईश्वर रसरूप है। परमात्मा रसरूप है। आपको सुनने में रस आ रहा है तो ये रस नहीं है, ये परमात्मा है।

हम निम्बार्की। हमारी परंपरा तो कृष्ण की; गाता हूं राम को; रोटी तो राम की खाते हैं, लेकिन शंकर से महोब्बत बहुत करता हूं। और राम है मेरे लिए सत्य, कृष्ण है मेरे लिए प्रेम और महादेव है मेरे लिए करुणा। किसी ने पूछा है, 'बापू, महिलाओं को शंकर पर जल चढ़ाना चाहिए या नहीं?' तो, कैलास आश्रम में जाईए, जहां मैं ठहरा हूं। वहां शिवजी की शताधिक साल से बहन लोग पूजा करती है। मेरा शंकर निराला है। आज सुबह तो हुआ क्या? मैं शिवजी का अभिषेक कर रहा था, तो अभिषेक करके मैंने शिवजी को एक हाथ में से दूसरे हाथ में रख दिया। मुझे गंध लगाना था। फिर मैं शंकर को खोजने लगा, शिवलिंग कहां गया? दस मिनट करीब खोजा! मैंने कहा, अभी तो मैं जल चढ़ा रहा हूं और ये शंकर गया कहां? मैं चमत्कार में मानता नहीं। ग्यारहवीं मिनट में पता लगा कि जिसको मैं खोज रहा हूं वो मेरे हाथों में मैने ही रखा था! आपका भी अनुभव होगा, कभी-कभी हमें चश्में पहने हो और हम चश्में खोजते हैं! मेरा तो अनुभव है। आमजनता भी ओलरेडी परमतत्त्व को पा चुकी है; उसको हम क्लिष्ट करते हैं कि पाओ-पाओ! इतना महंगा ब्रह्म को क्यों बनाया गया? जरा सरल करो। 'ईश्वरः सर्व भूतानाम्।' ईश्वर सर्वत्र है। दुनिया में दसों दिशा से जहां से शुभ मिले, ले लो। सत्य, प्रेम, करुणा जहां से मिले, ले लेना। खिड़कियां बंद मत करना। दुनिया बंधियार हो गई है। दुनिया संकीर्ण हो गई है।

ओशो का दृष्टांत है कि मुल्ला नसिरुद्दीन एक दिन सुबह-सुबह अपने गधे पर बैठकर बाज़ार में भागा जा रहा था! भरी बाज़ार है। सब लोग कहते हैं, नसिरुद्दीन, कहां जा रहे हो? बोले, मुझे रोको मत, मैं जल्दी में हूं। मुझे रोकना मत। भागा जा रहा है! तीन घंटे के बाद लौटा। बाज़ार में वो ही लोग थे। बड़ा थका हुआ, हारा हुआ था। सबने कहा, मुल्ला, बात क्या थी? बोले, मैं गधे को खोजने के लिए जा रहा था। बोले, तुम गधे पर तो थे! बोले, तीन घंटे के बाद पता चला कि मैं गधे पर था! शायद तीन-तीन जिंदगी बीत जाती है तब पता

लगता है कि हम जिसको खोजने निकले थे उसीके कारण तो हम खोज पा रहे थे! हम वहीं ही बैठे हैं!

रोज सूरज निकलता है, ये परमात्मा का स्फुरण नहीं है? 'जगत मिथ्या है', ये जो महापुरुषों अनुभव कर चुके हैं उन्हींका सत्य है। लेकिन आप मुस्कुराते हो, तो मुझे लगता है, मेरा हरि मुस्कुरा रहा है। मेरी कथा में देखता हूं, जब 'हर हर महादेव' कराउं और आपकी दोनों भुजाएं उपर उठती है, ये नारायण नहीं तो ओर है क्या? तो, जहां तक हम नहीं पहुंच पाए तब तक दंभ क्यों करे कि मिथ्या मिथ्या! हमारी जटिलता ने ही हमारे हरि को छिपा रखा है। और अपना पद, अपनी प्रतिष्ठा इन सभी को इधर-उधर करके सत्य मिले वहां ले लेना। मैं आपको 'मानस' से कहूं।

उतरे राम देवसरि देखी।

गंगा के तट पर रथ आया और गंगाजी के दर्शन होते ही राम रथ से ऊतर गये और गंगाजी को प्रणाम किया। और भरत जब वोही गंगा के तट पर गये तो गंगा को देखकर रथ से नहीं उतरे। माज़रा क्या है? यदि परंपरा का ही निर्वहन करना था तो दोनों सूर्यवंशी है; दोनों दशरथ के पुत्र है; दोनों धर्माचार्य वशिष्ठजी के चेले हैं। दोनों का ससुराल एक है। और भरत और राम का तो वर्ण भी एक है। कहने दो, दोनों का शील भी एक है। भरत ने कब रथ का त्याग किया?

राम सखा सुनि संदनु त्यागा ।

जब भरतजी को कहा गया कि भरत, ये जो गुह खड़ा है ये राम का मित्र है। गंगा देखी ही नहीं भरत ने! रामसखा सुनकर भरत ने रथ का त्याग कर दिया! बड़ी क्रान्तिकारी घटना। परंपरा छोड़ दी गई। 'मानस' अद्‌भुत शास्त्र है, अनुभूत शास्त्र है और अवधूत शास्त्र है। तीनों याद रखना। भरत से पूछा गया कि गुह बड़ा कि गंगा बड़ी? निर्णय कौन करे? नि:शंक गंगा बड़ी होनी ही चाहिए। तो बड़े को पहले प्रणाम करना चाहिए। भरत ने दो-टूक कहा, गंगा तो माँ है। उसके लिए मैं क्या कहूं? लेकिन मेरा आदर्श गुह बन सकता है। सत्य जहां से मिले, कबूल। भरत कोई सामान्य आदमी नहीं है। भरत का आदर्श समाज का एक अंतिम आदमी है, जिसको गांधी खोजते थे। धर्मजगत को भी आज यही करना पड़ेगा। यद्यपि विशेषणमुक्त धर्म ने आदि काल से ये किया है कि आखिरी आदमी धर्म के हाथ पहुंचे।

धरमु न दूसर सत्य समाना ।

और फिर भी आगमनिगम का कहीं भी अपराध नहीं।

आगम निगम पुरान बखाना ।
परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा ।।

धर्म मानी क्या? तिलक? तिलक होना चाहिए। तिलक हमारा परिचय है यदि बहिर् तो बहिर्। कोई तिलक करे उसकी आलोचना मत करना। कोई माला जपता है, खुशी ना करो तो कोई बात नहीं, निंदा न करना। जो सहज जीता है उसको जीने दो।

तो, हमारे शास्त्रों ने जो धर्म की बातें कही है, विशेषणमुक्त धर्म की चर्चा की है। जिन्होंने आख़िरी आदमी का ध्यान रखा। संत भरत का आदर्श गुह बना, गंगा नहीं। इसमें गंगा नाराज नहीं हुई। केवट ने हरि को भी तारा। भरत को पूछा गया, आपका आदर्श गुह कैसे बना? बोले, गुह नि:साधन है। और केवल कृपा के कारण गुह ने ऊंचाई प्राप्त की। मैं भी नि:साधनता से केवल हरि की कृपा से हरि को पाना चाहता हूं। यदि कोई यज्ञ-योग न कर पाये तो 'मानस' कहता है -

नाथ सकल साधन मैं हीना ।
किन्ही कृपा जानी जन दीना ।।

अध्यात्मविद्या को ऐसे रसिक बनाकर पिलाई जाय। ये बहुत कठिन है। वशिष्ठजी वेद-पुराण की गाथा सुनाते। और राम सबकुछ जानते हुए भी सुनते थे। कथा

कभी एक होती ही नहीं। मूल एक होता है। रामकथा इतने साल से कह रहा हूं। तो राम तो वन में ही जायेंगे, वोशिंग्टन थोड़े जायेंगे? लेकिन राम का वनगमन हमारे लिए पारमार्थिक पथ के लिए रोज़ एक नया पथदर्शन है। तो, कुछ बातों को हमने बहुत जटिल कर दिया!

एक फकीर था। उसको एक आदमी ने पूछा कि तुमको ब्रह्मविद्या की प्राप्ति हो गई? बोले, हां, हो गई। तो बोले, मांगना चाहोगे तो क्या मांगोगे? बोले, एक कप चाय। बोले, क्या बात करते हो? तूने परमात्मा को पा लिया, ईश्वर को पा लिया, तूने निर्वाण को मुठ्ठी में ले लिया और एक कप चाय! बोले, मिल सब गया। क्या शेष रहा? और जब तक हूं कुछ करना पड़ेगा। तो एक कप चाय पिला दे। होगा कोई पहुंचा हुआ आदमी। और पहुंचे हुए की हमें पहचान नहीं! हम झूठ को सच का करार देते हैं, सच को झूठ का आभूषण पहना देते हैं! यही तो पतंजलि की अविद्या है साहब! इससे बाहर निकालते हैं भगवद्‌कथा का सत्संग और सत्संग से प्राप्त विवेक, जो हमें क्षीर-नीर का बोध प्रदान करते हैं। बुद्धपुरुष जो होता है, उनसे हम जैसे मूढ़ों को इस प्रपंच में भी कोई पारमार्थिक गाथा सुनने को मिल जाय तो हमारे जीवन के पारमार्थिक रास्ते में चलने के कुछ ओर हमें मार्गदर्शन प्राप्त होगा।

तो, उस समय वशिष्ठजी परमारथगाथा रघुकुल को सुनाते रहते थे। एक परंपरा-सी थी। ये अर्थवाद केवल दंतकथाओं से भरा है। इतिहास मत खोजना, अध्यात्म खोजना। कोई पौराणिक घटनायें ऐसी मिले कि उसका आधार नहीं है। तथ्य न हो तो चिंता नहीं, सत्य तो होगा। कोई सार होगा, कोई परिणाम होगा।

तो, अक्सर पांच परमारथगाथा सुनाते थे। इसमें एक पारमारथी गाथा थी शिबि की; दूसरी थी दधीचि ऋषि की; तीसरी थी हरिश्चंद्र की; चौथी थी रंतिदेव की और पांचवीं थी बलि की। यद्यपि कल्पभेद है। क्योंकि कथायें अनगनित है, कल्पभेद होगा। 'आनंद रामायण' उठाओ, वहां लिखा है कि हनुमानजी ने लंकादहन कर दिया। लंका जल उठी तो बाबा को कफ हो गया। मुझे अच्छा लगता है कि मानवीय वस्तु सब देवताओं को लागू होनी चाहिए। हम देवताओं को बिलग समझ बैठे इसलिए कहते हैं कि देव नहीं बन सकते! नहीं, उसको पहले मानव बनाओ। फिर कहो, अब दिखा! छोटे से छोटे आदमी का भी हौसला बढ़े कि मैं भी जीव से शिव बन सकता हूं। तुलसी की कौशल्या क्यों कहती है कि 'किजै सिसुलीला'; पहले ओलरेडी जान चुकी है। मुझे इस रूप में सीधा परमात्मा नहीं चाहिए, मुझे मनुज रूप में चाहिए।

मानवता बची रहे इसलिए सभी संत त्याग करके बैठे हैं। संस्कृति बची रहे। गाय बची रहे। देव जीते रहे और मानव मर गया, तो पहला इल्जाम लगेगा धर्मजगत पर! मानव बचना चाहिए, मानवता बचनी चाहिए। और मुझे खुशी है कि आजकल राष्ट्र की युवानी ये ही काम में लगी है। और संन्यासी ऐसा करे तो संसारी युवक बाकी ना रह जाय। उठो, लक्ष्यप्राप्ति के लिए। तो बाप, हनुमान को कफ हुआ। मुझे अच्छा लगा, वर्ना 'हनुमानचालीसा' में तो कहा है, 'नासै रोग हरै सब पीरा।' 'आनंद रामायण' की बात जानी तबसे हनुमान मुझे और प्यारा लगने लगा!

तो, वशिष्ठजी परमारथगाथा कहते थे। संदर्भभेद से खोजना पड़ेगा, ये परंपरा-सी लगी थी रघुकुल में। प्रत्येक दिन के लिए कथा प्रासंगिक बनाई जाती थी। शिबि, दधीचि, हरिश्चंद्र, रंतिदेव, बलि ये पांच कथायें रामने सुनी थी। ये कहने का मौका वनवास में आया। शृंगबेरपुर में राम का रात्रि विश्राम हुआ। सुबह में भगवान ने प्रात: क्रिया करके वटक्षीर मंगवाया और भगवान ने जटा बांधी। तुलसी लिखते हैं, अयोध्या का

प्रधानमंत्री ये देखता है साधुचरित सुमंत। जब राम-लखन की जटा देखी, सुमंत के नेत्र भर आये! सुमंत राम से निवेदन करते हैं, प्रभु, अयोध्या अनाथ न हो जाय! और राम कृपा करके सुमंत को संबोधन करते हैं, हे सुमंत, आप हमारे पितातुल्य हो। लेकिन धरम का सही अर्थ क्या है? धर्म मत क्या है? धर्म से निकलता परमारथ क्या है? उसके जो शोधक लोग हैं इसमें आप है। आपने सब धर्म के मत को खोजा है। आप मुझे ये धर्म छोड़ने को कहोगे? आपसे मैंने कथायें सुनी है -

सिबि दधिच हरिचंद नरेसा ।
सहे धरम हित कोटि कलेसा ।।
रंतिदेव बलि भूप सुजाना ।
धरमु धरेउ सहि संकट नाना ।।

ये पांच कथा रघुवंशियों को सुनाई जाती थी। परमारथ के कारण ये पांचों ने कोटि कलेश सहा। रंतिदेव और बलि ने धरम को धारण किया। और आप तो जानते हैं, ये धरम कौन-सा है। कौन-सा धर्म? तब प्रभु के मुख से बात आई -

धरमु न दूसर सत्य समाना।
आगम निगम पुरान बखाना।।

सुमंतजी, सत्य के समान कोई धर्म नहीं। आगम-निगम-पुरान ये सभी ग्रंथों ने हमें यही तो सिखाया है। और ऐसा धर्म आज मुझे माँ कैकेयी की कृपा से सुभल हुआ है और आज मैं उसका त्याग कर दूं? हे धर्म मत के प्रतिपादक, आप मुझे ये कहोगे कि धर्म छोड़ दे? छोड़ने से रघुकुल की अपकीर्ति नहीं होगी? आप से कथा सुनी है। ये सब पारमार्थिक गाथा है। ये पांचों गाथा हमारे शास्त्र में है।

शिबि; एक पक्षी को बचाने के लिए बलिदान कहां तक पहुंचता है, इनके परोपकार की इतनी दिव्यता की कसौटी के लिए 'महाभारत' में ये कथा आई। और शिबि नहीं जानते? पहुंचे हुए आदमी जान ही जाते हैं कि मुझे छला जा रहा है, लेकिन उनकी ऊंचाई उनको मजबूर कर देती है कि छल रहे हैं चलो, छले! माया ने इतना ठगा है तू भी ठग ले! तो, शिबि पलडे में आश्रित पक्षी को जीवित छोड़ने की शर्त में उनके बराबर आमीस देने अपना अंग काटते हैं। कितना बड़ा परमारथ है ये! अंग तक का दान! किसीने शरीर को काशी की बाजार में बेच डाला! 'एक बार, दो बार, तीन बार!' कर दिया सत्य के लिए हरिश्चंद्र ने। शिबि ने अंग के टुकड़े कर दिए एक आश्रित को बचाने के लिए।

दधीचि ने देवराज और देवताओं की सफलता के लिए अपनी हड्डियां तक दे दी। रंतिदेव; महा मुश्केली के बाद उसको भोजन का थाल आया, कसौटी की गई। भिक्षुक आया, भिक्षा दो और सबकुछ दे देता है। बलि तीन डगर में सबकुछ प्रदान कर देता है वामन को। सब जगह देने की कथा है। लेने की कथा स्वारथ की कथा है, देने की कथा परमारथ की कथा है। पांचों में देने की बात है। कहीं सत्य के लिए, कहीं प्रेम के लिए, कहीं करुणा के लिए।

आप गौर से मेरी एक बात सुनिए। ये पांच पारमार्थिक गाथा में भी अब इक्कीसवीं सदी में संशोधन होना चाहिए। अल्लाह करे, ऐसी कसौटी ना हो अब धर्म के नाम पर कि किसी को अंग काटना पड़े। ये आदर्श जरूर है, परमारथ गाथा है, लेकिन इक्कीसवीं सदी में उसको पुन: सक्रिय नहीं होनी चाहिए। अब तो किसी को ठेस लगे तो आंसू हमारी आंख में आते हैं। मेरे नरसिंह मेहता ने अद्‌भुत पद गाया है! महात्मा गांधीजी ने उसको वैश्विक पद का दर्जा दिया।

वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीड पराई जाणे रे;
परदु:खे उपकार करे ने मन अभिमान न आणे रे।

संशोधन कैसे करे? तो देह काटना नहीं। यहां देहाभिमान काटना। देहाभिमान हमारा मिटे, मूल तो शिबि को ही रखना। हम देहाभिमान से मुक्त नहीं। आज

का परमारथ होना देहाभिमानमुक्ति। अब दधीचि हड्डियां भी देते हैं। और मैं शस्त्रविरोधी आदमी हूं। शस्त्र कायम हिंसा का प्रतीक है। खाली हाथ में रखोगे तो भी खेल-खेल में भी कभी यूझ करने की इच्छा हो जाएगी। एक पेन हाथ में रखोगे तो कोई कारण नहीं तो भी कागज में आप कुछ न कुछ करोगे! हाथ में मोबाईल होगा तो भी आप कुछ न कुछ करते रहोगे! क्योंकि जो भी चीज हाथ में आती है तो आदमी कभी न कभी दुरुपयोग कर सकता है। इसलिए हड्डी का वज्र बनाया जाय और असुर को मारा जाय? देश-काल अनुसार ये कथा है; इसके मूल को पकड़ के रखे। लेकिन अल्लाह करे, शस्त्र बनाने के लिए हमारी हड्डियां उपयोग में न आनी चाहिए। अब हड्डियां देने की जरूरत नहीं। परमात्मा की धड्डिया न उड़े उसका ध्यान रखे! मेरी व्यासपीठ बिलकुल शस्त्रविरोधी व्यासपीठ है। शास्त्रप्रधान व्यासपीठ है। परमात्मा करे, शस्त्रमुक्त समाज हो; शस्त्रमुक्त सियासत हो; शस्त्रमुक्त पृथ्वी हो। भगवान राम ने रावणनिर्वाण के बाद अयोध्या आये और गुरु से प्रणाम किया तब अपने धनुषबाण छोड़ दिए और गुरु के चरण पकड़ लिए। जगत को मेसेज दिया कि मुझे जरूरत थी धनुषबाण की तब रखे, लेकिन अब शस्त्र की जरूरत नहीं। अब शास्त्रवेत्ता के चरणों में शरणागति की जरूरत है। जिस सूत्र के लिए गांधी ने प्राण की आहुति दी वो अहिंसा। पूरा जगत हरियाला रहे।

परम धरम श्रुति बिदित अहिंसा।

जैसे घास की गठियां बेची जाती हो, कोई चीजवस्तु का लीलाम होता हो, ऐसे आदमी को सत्य के लिए बाज़ार में अपने पुत्र का लीलाम करना पड़े, अपनी स्त्री का लीलाम करना पड़े! और आखिर में हरिश्चंद्र खुद कुछ सिक्कों के लिए अपनेआप को बीके! सत्य बिकाउ ना हो, टिकाउ हो। क्योंकि मूलत: सत्य शाश्वत है। जिस माता ने रोहित को बेचा होगा इस औरत की कल्पना तो करो यार! तथाकथित समाज ने उसके वात्सल्य का गला घोंट दिया है! प्रभु करे, ऐसी कसौटियां ना आये। इक्कीसवीं सदी में परमात्मा करे, कोई भूखा ना हो। किसी भूखे को देने के लिए किसी को भूखा न रहना पड़े। किसी को अभाव के कारण उपवास की नोबत ना आये। व्रत के रूप में ठीक है।

बलिराजा के सामने वो आया था ब्रह्मचारी; वामन था। और कहा, तीन डग पृथ्वी दे दे। उसने कहा, ले लो। अब तीन कदम पृथ्वी मांगी तो कदम तो उनके होने चाहिए न? अब धर्म के नाम से ऐसा किसी से छल ना हो! ये तो जगतमंगल के लिए हुआ एक आदर्श स्थापित। मैं ब्राह्मणों को, आचार्यों को प्रार्थना करता हूं, ब्राह्मण मेरे देवता है सब, लेकिन गरीब आदमी पूजापाठ करना चाहे तो लंबा लिस्ट मत दो। 'किसमिस लाओ! काजु लाओ! कश्मीर का केसर लाओ!' उसके बच्चें भूखे हैं। उसकी सत्यनारायण की कथा सस्ते में करदो ना यारों! बहुत थोड़े में करो, बहुत लंबा लिस्ट मत दो। विधियां जितनी जरूरी है, करो।

मैं बिहार में अभी कथा करके आया। मुझे बताया गया कि छोटे-छोटे गांव में एक छोटे-से कर्मकांड कराने के लिए आदमी को जमीन बेचनी पड़ती है! नहीं, नहीं, कृपा करो। इन जो आखिरी आदमी है इन पर कृपा हो, जो वंचित है। अथवा तो जितना संकल्प किया जाय इतना लो। तीन कदम छोटे-छोटे थे इसके बाद विराट बनकर तुम सबकुछ ले लेते हैं वो कथा तो अद्‌भुत है! मूल तो रहना चाहिए प्लीज़, लेकिन नया फूल खिलना चाहिए। मेरे कहने का मतलब दान-दक्षिणा से छल निकलना चाहिए। ये गाथायें जो राम ने सुनकर अपने चित्त में संग्रहित करली थी वो सुमंत को सुनाई।

कल भगवान राम के प्राकट्य का उत्सव हमने मनाया। विज्ञानव्रत का शे'र सुनिए -

जब तक उनके पास रहा।

किसके पास? हरिनाम के पास, कोई हरिरूप, बुद्धपुरुष के पास। कोई ऐसा पारमार्थिक शास्त्र का सामीप्य, तभी तो अनुभव होता है कि जीवन कुछ है। वर्ना तो जीवन का कोई अर्थ नहीं दिखता।

जब तक उनके पास रहा।
मैं हूं ये अहसास रहा।
सब कुछ खोकर भी मुझको,
पाने का आभास रहा।

इससे पहले तो मेरी कोई जिंदगी है ऐसा अहसास तक नहीं था। ये तो मैंने नाम लिया। पता लगा हम भी कुछ है, लगता है अभी भी कुछ मिलेगा। जो पाना है वो शेष है।

प्रभु का प्राकट्य हुआ। जैसे कौशल्या ने पुत्र को जन्म दिया वैसे कैकेयी ने एक पुत्र को जन्म दिया, सुमित्रा ने दो पुत्र को जन्म दिया। पूरी अयोध्या आनंद में डूबी है। एक महिने का दिन हो गया, मानो रात होती ही नहीं! आज अयोध्या में ब्रह्मानंद और परमानंद का संयोजन हुआ है। फिर नामकरण संस्कार होता है। भगवान वशिष्ठजी ने अंत:करण की प्रवृत्ति के अनुसार चारों पुत्र का नाम रखा, 'जिसके नाम से आराम-विश्राम की उपलब्धि होगी उसका नाम राम। जो सबको भरेगा, पोषण करेगा उसका नाम भरत। जिसके नाम के सुमिरन से शत्रुता-दुश्मनी-वैरवृत्ति मिट जायेगी ऐसे बालक का नाम शत्रुघ्न और समस्त लक्षण के धाम परमउदारचरित इस बालक का नाम मैं लक्ष्मण रखता हूं।' उसके बाद यज्ञोपवित संस्कार हुआ। विद्या प्राप्त करने गुरु के आश्रम गए। विद्यासंपन्न होते लौटे।

एक दिन विश्वामित्रजी आए। राम-लक्ष्मण को लेकर आश्रम पधारे। रास्ते में ताड़का का निर्वाण हुआ। यज्ञ की रक्षा हुई। मारीच को शतजोजन फेंका। सुबाहु को निर्वाण दिया। और मुनि के कहने पर राघव और लखन की जनकपुर की यात्रा शुरू होती है। रास्ते में अहल्याउद्धार की कथा। प्रभु ने चरणरज का दान किया। आगे गंगातट पर विश्वामित्र ने गंगा अवतरण की कथा सुनाई। विदेहपुर में प्रभु का प्रवेश हुआ। एक अमराई में निवास किया। जनक को खबर मिली। जनकजी सन्मान के लिए आते हैं। राम को देखते जनकराज, नामरूप को मिथ्या माननेवाले ये वेदांती महापुरुष राम में लुब्ध हो गए! 'महाराज, जल्दी बताओ, ये बालक कौन है?' जनक को रामरूप में डूबते देखकर विश्वामित्र ने कहा, मेरा हाल भी यही था! गर्भित परिचय दिया विश्वामित्रजी ने। सबको प्रिय लगनेवाला तत्त्व परम के सिवा कोई हो ही नहीं सकता। महाराज, ये सबको प्रिय लगते हैं। प्राकृत परिचय दिया। मेरे कहने पर जनकपुर आया है। राघव को मिथिला में 'सुंदरसदन' में निवास दिया। दोपहर का समय हो गया था तो सभी ने भोजन करके विश्राम किया।

धर्म के नाम से किसी से छल ना हो! मैं ब्राह्मणों को, आचार्यों को प्रार्थना करता हूं, गरीब आदमी पूजापाठ करना चाहे तो लंबा लिस्ट मत दो, 'किसमिस लाओ! काजु लाओ! कश्मीर का केसर लाओ!' उसके बच्चें भूखे हैं। उसकी सत्यनारायण की कथा सस्ते में करदो ना यारों! बहुत थोड़े में करो, बहुत लंबा लिस्ट मत दो। विधियां जितनी जरूरी है, करो। मैं बिहार में अभी कथा करके आया। मुझे बताया गया कि छोटे-छोटे गांव में एक छोटे-से कर्मकांड कराने के लिए आदमी को जमीन बेचनी पड़ती है! नहीं, नहीं, कृपा करो।

अखंड विवेक से निकले हुए वचन को परमारथ-वचन कहते हैं

मानस-परमारथ : ७

कल हम चर्चा करते थे परमारथगाथायें की। आज एक और बिंदु पर हम ध्यान आकर्षित करें वो है परमारथवचन। गोस्वामीजी लिखते हैं -

मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे।
कहि परमारथ बचन सुदेसे।।

मुनि ने देशकाल अनुसार भरत को उपदेश किया। परमारथबचन में उपदेश किया। तो परमारथ बचन मानी क्या? वचन तो हम बोलते ही रहते हैं। लेकिन इनमें से परमारथ वचन की पहचान क्या? ऐसी दुनिया में हम बस रहे हैं जहां स्वारथवचन बोलनेवालों को ऐसा लगता है कि मैं भी परमारथवचन बोल रहा हूं! कैसे परखा जाय कि क्या है परमारथवचन? कौन है कसौटी? जैसे तप के आधार पर समग्र सृष्टि है बाप, उसी तरह किसी-किसी बुद्धपुरुषों के वचन पर ही सृष्टि टिकी हुई है। मैं पच्चीस सौ साल जाकर बुद्ध को प्रणाम करूं तो मुझे वचन सुनाई देते हैं बुद्ध के कि सम्यक् रहो, सम्यक् रहो। न अति, न कम जिसको बुद्ध ने मध्यममार्ग कहा। ये पच्चीस सौ साल पहले के बुद्ध के वचन को हम सुन पाते हैं। बुद्ध का तो अनेक वचन है, लेकिन इनमें से कोई यदि पकड़ना है अपनी-अपनी रुचि के अनुसार। फिर भगवान महावीर, उसका वचन तो अहिंसा है। महावीर के काल में एक बहुत बड़ा लुटेरा हुआ; जैसे बुद्ध के काल में अंगुलीमाल हुआ। और जैसे कुंभकार अपने बेटे को अपनी कला सिखा देता है; संगीतकार अपने बेटे को संगीत सिखा देता है। उसी रीत के अनुसार लुटेरे ने अपनी लुट की कला अपने बेटे को दे रखी थी और कहा था, हर घर जाना, जितना लुट सको लुटना; कोई भी मिले, लेकिन महावीर से बचना! ये आदमी मुश्किल में डाल सकता है। इस बाप ने अपने बेटे को कहा था, महावीर की किसी भी चीजों से मत डरना, उसके बचन से बचना। यदि उसका वचन सुना तो तू कायम के लिए गया! न चोर रह पायेगा, न डाकू बन पायेगा! खबर नहीं, क्या हो जाय!

बुद्धपुरुष के वचन सुनना खतरा है। जो जोखिम उठाये वो ही सुन पाता है। और यदि सुन लिए जाय तो फायदें बहुत है। जिंदगीभर ये लुटेरे का बेटा महावीर के वचनों से बचता रहा! है जोखिम लेकिन बुद्धपुरुष के वचन यदि सुन लिए जाय तो उसके समान कोई परमार्थ नहीं है। कहा जाता है कि एक बार वो महावीर की शिबिर के पास से गुज़रता है और महावीर जैन परंपरा के अपने श्रावकों को कुछ कहते थे। इनमें से एक वचन वो लूंटेरे के बेटे ने सुन लिया कि देवताओं को छाया नहीं होती। सुन तो लिया लेकिन भागा कि इनके वचन मेरे कान में कहां आ गया! भागा लेकिन वचन उसका पीछा करता है। कुछ दिनों के बाद राजा की तिजोरी को लुटता है। रंगे हाथ पकड़ा गया। और आज तक कितनी लूंट की, किसको मारा सब निकलवाने के लिए, सब प्रकार के प्रयोग किए। राजा के मनोचिकित्सकों ने कहा, उसको खूब पिलाओ, भोगविलास में डाल दो और इतना उसको पागल जैसा कर दो ताकि आज तक जितने गुनाह किये

हो वो सब बोलने लगे। कहते हैं, वो बेचारा समझ नहीं पाया! चारों ओर भोग! और उसको कहा कि तू स्वर्ग में है, राजा खुश हुआ है तेरे पर। तेरे लिए स्वर्ग खड़ा किया! ये अप्सरा नाच रही है! ये देवताओं की अप्सरा है और ये सब तेरे साथ रंगराग में डूबे हैं ये देवगण है! आज तू देव की मेहफ़िल में आ गया। उसको लगा, मेरे साथ छल तो नहीं है? तब महावीर के वचन याद आये, 'देवताओं को छाया नहीं होती।' और ये सबको तो छाया है! और फिर वो आदमी वहां से भागता है और सीधा महावीर स्वामी के शरण में शरणागत बन जाता है।

कबीर ने एक परमार्थी वचन कहा-

कबीर कहे कमाल को दो बातें सीख ले।
कर साहिब की बंदगी भूखे को कुछ दे।।

नानक ने एक वचन कहा, 'एक ॐकार सतनाम।' 'सीय राममय सब जग जानी।' तुलसी ने कह दिया। उपनिषद ने कह दिया, 'त्येन त्यक्तेन भुंजीथा:।' मीरां के तो बहुत वचन है, लेकिन मीरां का एक वचन यदि मेरी रुचि के अनुसार मैं पसंद कर रहा हूं। मीरां वचन का दरिया है। आप अपनी पसंद के अनुसार पसंद करे। मैं आपसे एक प्रार्थना करूं, दुनिया में ऐसे रहो कि किसीका भी प्रभाव तुमको बंधन में न डाल दे। पद-प्रतिष्ठा, राजा तो ठीक लेकिन बावाओं से भी बचना! क्योंकि एक के प्रभाव में आओगे तो दूसरे की आलोचना करने लगोगे। साधु का प्रभाव तभी सफल होता है जब वो शरणागत व्यक्ति अपने स्वभाव को बरकरार रखे। और साधु कभी प्रभाव से नहीं पहचाना जाता, अपने स्वभाव से पहचाना जाता है। 'विनयपत्रिका' में गोस्वामीजी ने लिखा है -

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।

मीरां दृढ विश्वास से कहती होगी कि 'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।' ये नर्तन करता हुआ अद्वैत है। अद्वैत बेड़ियां नहीं बननी चाहिए, नुपूर बनना चाहिए। घूंघरुं बनना चाहिए। मीरां के पैरों मे अद्वैत की बेडियां नहीं है। कल एक संन्यासी कैलास आश्रम में विद्या का पाठ पढ़ते हैं, मेरे पास आये, बोले, 'बापू, एक बहुत बड़ी दुविधा है, बंधन क्या है, मोक्ष क्या है?' मैंने कहा, आप मेरे पास जिज्ञासा करे! मुझे जरा विचित्र लगता है! बोले, 'बापू, टालो मत। बंधन और मुक्ति में कुछ पता नहीं।' मैंने कहा, ये मैं क्या जवाब दूं? आप तो ब्रह्मविद्या पढ़ते हैं। उपनिषद् और 'गीता' में तो स्पष्ट लिखा है कि बंधन और मुक्ति का एक मात्र कारण है आदमी का मन। मन के सिवा कोई कारण नहीं। मन निकल जाय। लेकिन मन जानने को तड़प रहा है कि मैं ये भी जान लूं, ये भी जान लूं! निर्णय करो कि जानकर पहुंचना है कि मानकर पहुंचना है। साहब, मानने का मंत्र पकड़कर जानना। तो, मारग दोनों है। ओशो के बंदे को कहना चाहता हूं कि ओशो ने खुद कहा है कि प्रेम करना है, भक्ति करनी है तो आपको मानने से ही शुरूआत करनी पड़ेगी। छोड़ दो मन। न मोक्ष की किंमत रहेगी, न बंधन की। और मन छोड़ना मुश्किल है। व्याख्यायें होती है कि मेरा मन मिट गया है, बड़ा मुश्किल है। इसलिए भक्ति मारग कहता है कि मन कोई ऐसी जगह पर लगा दो कि बंधन-मोक्ष सभी द्वैत मिट जाय। मीरां उसी रास्ते की पथिक थी इसलिए उसका वचन मुझे बहुत प्रिय है।

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।

नरसिंह मेहता को याद करूं तो एक उसका वचन मुझे सुनाई देता है। ये भी ब्रह्मवादी थे। वो कहते थे -

ब्रह्म लटकां करे ब्रह्म पासे।

गंगासती के वचन -

जेने सदाये भजननो आहार।

जिसका भोजन भजन के अतिरिक्त कुछ नहीं वो उनका वचन।

तो, महावीर कहेंगे अहिंसा। बुद्ध कहेंगे, सम्यक् अथवा तो 'अप्प दीपो भव।' 'गीता' का केवल एक वचन पकड़ लो, 'मामेकं शरणं व्रज।' बात खतम! और कई महापुरुषों के वचन पकड़ने के बाद यदि एक बराबर है तो

चिंता नहीं, लेकिन एक जगह यदि बंध गए तो फिर उसके अनुकूल दूसरे से जवाब मिलेगा तभी आप संतुष्ट होगे, वर्ना नाराज भी हो सकते हो। डिप्रेस भी हो सकते हो। मेरे कुछ ऐसे अनुभव है। सब द्वार खूले रखो, लेकिन रुचि के अनुसार किसी बुद्धपुरुष के एक वचन पकड़ लो।

तो, परमारथ के वचन कौन-कौन? उसकी कसौटी क्या है? भरत के जितने वचन है 'रामचरित मानस' में वो सब एक अर्थ में परमारथ वचन है। जैसे हंस मोती चूगे ऐसे भरत के वचनों को संग्रहित करे। श्री लक्ष्मणजी जो आचार्य है, जीवधर्म के आचार्य है, रामानुज है, गुहराज के सामने उसने जो वचन कहे इन वचनों में चार बार 'परमारथ' शब्द का प्रयोग लक्ष्मणजी ने किया है। ये वचन केवल लक्ष्मणजी बोले हैं। ये वचन भी आप संपादित कर ले तो ये वचन कसौटी है कि परमारथ वचन कौन माना जाय। 'रामचरित मानस' की चौपाईयों को समझना कठिन तो है नहीं, सरल है, फिर भी आपको लगे कि ये तो मुश्किल भी है!

भगवान ब्याह कर अयोध्या आए उसके बाद पूरी अयोध्या में आनंद आनंद छा गया। कभी पढ़ लेना 'बालकांड' का समापन। फिर सुंदर अयोध्या सजाई गई है। उसी समय कौशल्याजी और रानियां चारों पुत्रवधूओं को लेकर सोने जाती है तब गोस्वामीजी कहते हैं, जैसे फणीधर अपने मणि को अपने हृदय से लगाकर सोता है वैसे सास अपनी बहु को हृदय से लगाकर सो गई। यहां सास को फणीधर कहा! गुरु के बिना इसका अर्थ निकालना इम्पोसिबल। ये मणिधर की बात है। शायद मणिधर सर्प होंगे। हमने तो देखे नहीं। कविता का तथ्य हो सकता है। जैसे कल्पतरु काव्य सत्य हो सकता है, देखा नहीं। मेरे तुलसीदासजी कभी-कभी तो मुझे रेशनालिस्ट लगते हैं। जिन लोगों ने तुलसी का बराबर मूल्यांकन नहीं किया ये लोग तुलसी को बार-बार गालियां बकते हैं कि ये लकीर के फकीर है! ये बिलकुल परंपरावादी है! अरे, ये बुद्धपुरुष है। मैंने आप से निवेदन भी किया कि बुद्ध के बाद यदि कोई दूसरा बुद्धपुरुष आया तो गोस्वामी तुलसी। ये मैं गा रहा हूं इसलिए नहीं। तुलसी के कई प्रसंगों से मैं सहमत नहीं हूं। मुझे अपनी निजता है। मैं तुलसी को गाउं इसका मतलब थोड़ा मैं हां में हां मिलाउं? प्रत्येक व्यक्ति को अपना-अपना स्वातंत्र्य होना चाहिए। अहंकार नहीं होना चाहिए, अपनी निजता होनी चाहिए। कभी-कभी लोग हमको कहते हैं कि बापू, आप तो तुलसी है। मैंने कहा, खबरदार, मुझे तुलसी कहा तो! तुलसीदासजी चाय नहीं पीते, मैं पीता हूं। तुलसी का और मेरा कई मेल ही नहीं बैठेगा। असंभव है।

युवान भाई-बहन, आप भी कभी कुछ दूसरा होने की अपेक्षा नहीं करना कि हमें विवेकानंद बन जाना है। नहीं, नहीं। तुम, तुम बनो। इससे प्रेरणा जरूर लो। एक के समान यहां दूसरा कोई हो ही नहीं सकता। नीम की दो पत्ति भी एक समान नहीं होती। एक युवक ने मुझे चिठ्ठी लिखी थी, मुझे स्वामी रामतीर्थ बनना है। भाव अच्छा है, लेकिन ये असंभव है। पहले स्वामी रामतीर्थ को पढ़ो। फिर कोशिश करो कि रामतीर्थ कैसे थे? उसका मूल नाम गोस्वामी तीर्थराम। तुलसीदासजी के वंशज है। और मुझे गौरव है, मैं जहां ठहरा हूं वहां स्वामी विवेकानंद पढ़ने आये थे। स्वामी रामतीर्थ भी। लाहौर की यंगमेन कोलेज के स्टुडन्ट रहे, फिर उसके प्रोफेसर रहे स्वामी रामतीर्थ। बच्चे थे उसको। उसकी पत्नी पूर्वाश्रम में एक बार अपने घर में थी। स्वामी रामतीर्थ लाहौर में थे। स्वामी रामतीर्थ उसका संन्यास का नाम है। पहले गोस्वामी तीर्थराम थे। तो सास ने अपनी बहु को कहा कि ये गोबर लेकर थपले थाप दो। तो बहु ने कहा, माँ इससे बहुत दुर्गंध आती है, मेरा सिर फटा जा रहा है! तो, फिर सास तो सास होती है! बोली, दुर्गंध आती है तो निकल जा! सास ने लाहौर की ट्रेन में बिठा दिया! और वो अपने बच्चे को लेकर लाहौर जाती है। जेब में एक पैसा नहीं! बच्चे भूखे, आंख में आंसू, मैं कहा खोजूं? किस कोलेज में हो?

दैवयोगवश वो वहां उसी शिक्षणसंस्था के पास ही आयी! बच्चे थक गए थे। अकेली एक पेड़ के नीचे बैठी है। योगवश अपने बच्चों को लेकर वो महिला उसी शिक्षणसंस्था के बाहर एक पेड़ के नीचे बैठकर बच्चों को ढाढस देती है, 'यहां तो रहते हैं, मिल जायेंगे।' रिसेस हुई। गोस्वामी तीर्थराम बाहर आये और एक केन्टिन थी वहां रोज एक पैसा देकर तीर्थराम रोटी खाते थे और केन्टिनवाला का इस युवक के प्रति इतना भाव था कि दाल मुफ्त देता था और स्वामी इससे पेट भरते थे। तीर्थराम रिसेस में बाहर आया और ऐसा उसने देखा, ये...! और वो महिला खड़ी हुई!

मैं ऐसे बुद्धपुरुषों को याद करता हूं तो फिर मुझे गौरांग चैतन्य की दशा भी याद आती है। ये सब जो ब्रह्मतत्त्व की खोज में निकल चुके हैं। एक आदमी जागता है तो उनके परिवारवालों को बहुत सहन करना पड़ता है। विष्णुप्रिया का स्मरण होता है तब आंखें भर आती है! चैतन्य महाप्रभु की माँ भेख धारण करनेवाले अपने बेटे से कहती है, बेटा, तू भेख ले रहा है, तू साधु हो रहा है; लेकिन एक विनंती, एक बार विष्णुप्रिया से मिल तो जा। ये खड़ी हो गई! माँ खड़ी हुई तो बच्चे भी खड़े हुए, 'माँ, पापा!' 'हां, बेटा!' गोस्वामीजी ने देखा। उसके कदम उसकी और बढ़े, 'देवी, आप! मैं प्रणाम करता हूं।' बच्चे लिपट पड़े। सिर पर हाथ घुमाया, गले लगाया। तीर्थराम पूछते हैं बच्चों को 'बच्चों, खाना है?' उस दिन गोस्वामी तीर्थराम के पास दो पैसे थे। वो रोटी देनेवाले केन्टिन के पास जाता है। दो पैसे दिए। साधुता का मेघधनुष! कोई भी मेघधनुष आकाश में चमकता है, इससे पहले वर्षा बहुत होती है, घनघमंड होता है। दु:ख सहन किए बिना साधुता शिखर पर जाती ही नहीं। 'आओ बच्चें।' दो पैसे दिए। कहा, 'रोटी दो।' ऐसे ही गोस्वामी तीर्थराम ने कहा, 'दाल तो आप देते हैं, बहुत उदार हो।' लेकिन आंख भर आई, 'आज थोड़ी दाल ज्यादा देना। बच्चे बहुत

भूखे हैं।' और केन्टिनवाला कहता है, 'मैं दाल देता हूं इससे भी आज दाल कम है! रोटी है।' बच्चें सुखी रोटी खा रहे हैं। और गोस्वामी तीर्थराम अपनी देवी के सामने देखता है। देवी तीर्थराम के सामने देखती है।

जो व्यवस्था के रूप में इस पृथ्वी पर आये और साधुसंन्यासी हो गए उसकी महिमा हम बयान नहीं कर सकते! लेकिन युवान भाई-बहन, भागने की जरूरत नहीं। जहां हो वहां थोड़ा जाग जाओ। जो विशिष्ट रूप में निकल गए वो तो अस्तित्व की व्यवस्था होगी। तुम्हें ऐसे बुद्ध बनने की जरूरत नहीं कि तुम तुम्हारी यशोधरा को छोड़कर, छोटे राहुल को छोड़कर भाग निकलो। अस्तित्व शाप देगा। जो महापुरुष निकल चुके उनकी तो एक अवस्था होती है।

तो, गोस्वामी पत्नी ने सामने देखे। पत्नी गोस्वामी के सामने। बच्चे माँ-बाप को देखते हैं। फिर पूछते हैं, 'देवी, आप बच्चे को लेकर यहां क्यों आई?' बोले, 'मेरी भूल हो गई। माँ ने मुझे थपले थापने को कहा। मैंने कहा, मुझे गोबर की दुर्गंध आती है। मेरा सर फटने लगता है! तो माँ ने मुझे डांटा। मुझे लाहौर में बिठा दिया!' 'अरे पगली, मेरी पढ़ाई बाकी है। मैं पूरा करते लौटूंगा। माँ से माफी मांग लो।' एक शब्द बोले बिना दोनों बच्चों को लेकर महिला लौट चली। अपने गांव में आकर माँ से कहनी लगी, 'मेरी भूल हो गई लेकिन माँ, कभी-कभी भूल भी भगवान की प्राप्ति करा देती है। मैं मेरे भगवान को मिलकर आई।' यही युवान, वेदांत में रुचि थी; सहस्वाध्यायी जब पूछते कि तीर्थराम, तुम्हारी इच्छा? तो कहते थे, पहले तो मैं धनसंचय करूंगा, कमाऊंगा और मेरे सभी परिवार के लिए पर्याप्त सुख दे दूंगा। लेकिन मेरा मूल मंत्र है नि:शुल्क ब्रह्मविद्या को पूरी दुनिया में फैलाना। वेदांत की स्थापना विश्व के कोने-कोने में करना प्रेम के फकीर की भांति।

तो, रामतीर्थ को आदर्श बनाओ, लेकिन निजता अपनी। हम हम रहे। और जो महापुरुष चेताने के लिए अपने सर्वस्व का त्याग करके इस जगत के वितरागी बनकर हमें परमार्थ की सूचना देते हैं ये महापुरुष लोग व्यवस्था है अस्तित्व की। सुनो सबसे वचन लेकिन जिसमें श्रद्धा हो ऐसे किसी बुद्धपुरुष के वचन से जीवन को धन्य कर दो। नहीं तो डामाडौल! इसलिए कृष्ण कहते हैं, 'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'

जिसके वचन विवेक, वैराग्य और भक्ति के रस से निकले हो उसको बुद्धपुरुष समझना। ये चाहे जो भी हो। विवेक से निकला हुआ वचन सत्य ही होता है, प्रिय ही हो सकता है। विवेक से बोला हुआ वचन सम्यक् होगा और विवेक से बोला हुआ वचन दीर्घसूत्री नहीं होगा। जितना जरूरी होगा उतना बोलेगा। हर मोड पर परमात्मा बैठे हैं, चुके हम जा रहे हैं! दुनिया का कोई मोड खाली नहीं कि जहां हरि हमारी प्रतीक्षा न करता हो। बुद्धपुरुष तो चिल्लाते हैं, लेकिन हम सुने तो ना? हम कहां सुने जा रहे हैं? हमारी यही तो मनोदशा है! तो जो शब्द विवेक से निकले वो परमारथी वचन है।

दूसरा, जो वचन वैराग से निकले। 'वैराग' बड़ा प्यारा शब्द है। गोस्वामीजी लिखते हैं -

कहिअ तात सो परम बिरागी ।
तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी ।।

यद्यपि उपनिषदों ने त्याग की महिमा गाई है। उपनिषदकार कहता है कि तुम्हारे पास लोग कितने हैं, इससे कभी अमृत नहीं मिलनेवाला। तुम्हारे पास भीड कितनी है, इससे अमृत नहीं मिलेगा। वाहवाह मिलेगी, प्रतिष्ठा मिलेगी, जयकार लोग करेंगे, लेकिन जयजयकार अंतत: कभी न कभी ज़हर बन सकता है। उपनिषद् कहता है, एक मात्र त्याग से अमृत मिलेगा। उपनिषद् त्याग की बड़ी महिमा करते हैं। और गुजरात में स्वामी नारायण संप्रदाय में रहे स्वामी निष्कुळानंदजी का एक बहुत अच्छा गुजराती पद है -

त्याग न टके रे वैराग विना।

त्याग तभी टिकाउ होगा जिसके पीछे वैराग्य हो। मैं इतना कहूं कि हाथ से छूटे वो त्याग और हैया से छूटे वो विराग। स्वामीजी कहते हैं कि अंदर तो बहुत इच्छायें उछल रही है, उससे कैसे मुक्ति मिले? अंदर तो बहुत इच्छायें होती है, इसको कैसे त्यागी जाय? निष्कुळानंद कहते हैं -

वेश लीधो वैरागनो, देश रही गयो दूरजी;
उपर वेश अच्छो बन्यो, मांही मोह भरपूरजी.

स्वामी निष्कुळानंदजी कहते हैं, वेश तो वैरागी का ले लिया, लेकिन अंदर मोह बहुत भरपूर है।

तो, मेरा कहने का मतलब परमार्थ वचन वो है, उनकी कसौटी है, जो ज्ञान से निकला हो, जो विवेक से निकला हो। रामानुज लक्ष्मण जो गुहराज के सामने बोले परमारथवचन, उनकी भूमिका ये है। लक्ष्मणजी बड़े आक्रमक है, लेकिन यहां जब गुह को संबोधन करना है। राम-जानकी सो गये हैं। शृंगबेरपुर की ये पहली रात्रि। ब्रह्म सोया है और जीव जाग रहा है। चारों और चौकी के लिए आखिरी समाज के लोग जाग रहे हैं। गुहराज ने चारों ओर कडक पेहरा रख दिया था और बीच में सीता-रामजी एक दर्भ की पथारी पर सोये हैं। जिस आदमी को सुबह राजतिलक होना था, सुबह होते-होते उनके शरीर पर वनवासी लिबास आ चुका! उनका नाम महामंत्र बन सकता है विश्व में जो इस त्याग और वैराग्य की नींव पर खड़ा है। गुहराज सीता-राम का भूमिशयन देख रो पड़ा! आज शृंगबेरपुर के वासियों के बीच में लक्ष्मण और गुहराज के संवादरूपी 'लक्ष्मणगीता' का आरंभ होता है। ये परमारथी वचन का नाम है 'लक्ष्मणगीता।' 'रामचरित मानस' में पांच 'गीता' है, इनमें से ये 'लक्ष्मणगीता।' पंचवटी में राम लक्ष्मणजी के पांच आध्यात्मिक प्रश्नों के जवाब देते हैं ये है 'रामगीता।' सीयाजु अत्रि ऋषि के आश्रम में गई और अनसूया माँ ने नारीधर्म की कुछ बातें समझायी उसको 'अनसूया गीता' कहते हैं। गरुड के द्वारा भुशुंडिजी को सात प्रश्न पूछा गया और सात प्रश्नों के उत्तर में जब भुशुंडि बोलते हैं, उसको कहते है 'भुशुंडिगीता।'

बाप, बिलकुल मध्य में 'गीता' का आरंभ हो चुका है। जहां परमारथी वचन बोले गये। लक्ष्मणजी आज मृदुवाणी बोलते हैं। निषाद को राम का भूमिशयन देखकर विषाद हुआ और लक्ष्मणजी ने कहा, गुह क्या बात है? विषाद कभी-कभी विवेकशून्य बना देता है। अखंड विवेक से निकले हुए वचन को परमारथी वचन कहते हैं। विषादवश गुह आक्षेप करता है, ये कैकेयी ने क्या कर दिया? राम और जानकी को सुख के समय में दु:ख दे दिया! एक विषाद प्रकट हो गया। उसी समय लक्ष्मणजी मधुर वचन बोले और वहां से शुरू होती है 'लक्ष्मणगीता', जो पारमार्थिक वचनों से आप्लावित है। सुबह तक ये चर्चा चली। वहां गोस्वामीजी कुछ पंक्तिया लिखते हैं -

बोले लखन मधुर मृदु बानी।
ग्यान बिराग भगति रस सानी।।

मृदु और मधुर वचन लक्ष्मणजी बोले निषादपति के विषाद को सुनकर और कहते हैं ज्ञान-वैराग्य और भक्तिरस में सनी हुई बाणी बोले। मेरे कहने का तात्पर्य यही था कि परमारथवचन की कसौटी ये है कि वचन विवेक से निकले हुए हो। जहां सत्य शब्द की गहन गहराई से प्रकट होता हो। ये है परमारथवचन। दूसरा, जो वचन वैराग्य से निकलता हो। वैराग्यरस से, होठों से नहीं। वैराग्य रस यद्यपि साहित्य का कोई रस नहीं है। ध्यान भी कोई साहित्य का रस नहीं है। तुलसी ने बनाया है आध्यात्मिक रस। साहित्य के तो नव ही रस है। रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्‌भुत, हास्य, करुण, शांत और शृंगाररस। 'रामचरित मानस' में कहीं जगह आपको मिलेगी जहां तुलसीदासजी ये नव रस की सृष्टि करते हैं।

तो, एक तो मधुर; दूसरे मृदु; तीसरे ज्ञान से निकले, चौथे वैराग्य से निकले और पांचवें प्रेम से निकले; वचन लक्ष्मणजी के यही है परमारथवचन। यहां

के लक्ष्मण कुछ बिलग मुद्रा में है। एक आचार्य की मुद्रा में है, एक गुरु की मुद्रा में है, एक बुद्धपुरुष की मुद्रा में है।

इन्द्रिय द्वार झरोखा नाना।

किसी के जीवन में ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित होती है तो इन्द्रियों के दरवाजे बैठे हुए ये स्वार्थी देवगण विषय के पवन के लिए हमारी इन्द्रियों के दरवाजे खोल देते हैं; आंतर्ज्योत को बुझाने के बार-बार प्रयत्न किए जाते हैं! मेरे तुलसी ने कहा, भगति-मणि प्रकट करो। भक्ति ये स्वयं प्रकाशित मणि है। प्रेम स्वयं प्रकाशित मणि है। जानना बंद करो, मानना शुरू करो।

नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती।

आज शृंगबेरपुर में घटना मध्य में हुई है, ये विशिष्ट है। यहां कोई छल नहीं है। यहां मधुर है, मृदु है, विराग है। 'गुहराज, तू मेरी माँ कैकेयी को दोष मत दो।' देखो, दूसरे ही रूप में लक्ष्मण आज दिखते हैं! 'गुह, माँ को दोष मत दो। क्योंकि इस दुनिया में कोई किसीको सुख नहीं देता, कोई किसीको दु:ख नहीं देता। सब अपने कर्मों का ही भोग भोगते हैं। आरोप दूसरों पर अविद्या के कारण, मूढ़ता के कारण हम करते हैं। तो हे गुह, ये सब मोह मूल है।'

देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं।
मोह मूल परमारथु नाहीं।।

हे गुह, ये सब द्वन्द्वात्मक जगत है। सब मोह का मूल है; उसमें परमारथ नहीं।

सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।

सपने में राजा भिखारी हो जाय और सपने में भिखारी राजा हो जाय, लेकिन जागने के बाद भिखारी को राजा का सुख नहीं रहता, तो राजा को भिखारीपन का दु:ख नहीं रहता। ये जब तक निंद्रा है तब तक का खेल है। जागने के बाद सब खत्म! जाग जाय तो चिंता नहीं। तो, जगत में जागे कौन?

परमारथी प्रपंच बियोगी।

हे गुह, इस जगत में वो ही जागा है जो योगी है। 'भगवद्‌गीता' भी महोर लगाती है, योगी है वो ही जागता है। योगी की परिभाषा? परमारथी है और पूरे प्रपंच में रहकर भी वियोगी है। तो गुह बोले, महाराज, ये जागना हम जैसे को पाले कैसे पड़े? तो गुह को सीता-रामजी को दिखाया, ये राघव सोये हैं, इनके चरण में प्रेम कर ले। यही जगत का श्रेष्ठ परमारथ है।

सखा परम परमारथ एहू।
मन क्रम बचन राम पद नेहू।।

मन-कर्म-वचन से राम के चरण में प्रेम कर ले और यदि प्रश्न उठे कि राम कौन, तो -

राम ब्रह्म परमारथ रूपा।
अबिगत अलख अनादि अनूपा।।

ये साक्षात् ब्रह्म परमारथरूप है। चार बार 'परमारथ' शब्द के वचन गुह के सामने लक्ष्मण बोले हैं। आज की कथा को विराम।

जिसके वचन विवेक, वैराग्य और भक्ति के रस से निकले हो उसको बुद्धपुरुष समझना। ये चाहे जो भी हो। विवेक से निकला हुआ वचन सत्य ही होता है, प्रिय ही हो सकता है। विवेक से बोला हुआ वचन सम्यक् होगा और विवेक से बोला हुआ वचन दीर्घसूत्री नहीं होगा। बुद्धपुरुष जितना जरूरी होगा उतना बोलेगा। हर मोड पर परमात्मा बैठे हैं, चुके हम जा रहे हैं! बुद्धपुरुष तो चिल्लाते हैं, लेकिन हम सुने तो ना? जो शब्द विवेक से निकले वो परमारथी वचन है। अखंड विवेक से निकले हुए वचन को परमारथी वचन कहते हैं।

नीति समझनी है तो 'महाभारत' और प्रीति समझनी है तो 'रामचरित मानस' पढ़ो

मानस-परमारथ : ८

'मानस-परमारथ' में परमारथपंथ, परमारथगाथा और कल थोड़ी चर्चा हुई, परमारथवचन। यद्यपि आगे के दिनों में परमारथवाद की कुछ चर्चा जरूर हुई है। वाद स्वारथ के वश कब हो जाय, कहना मुश्किल है। दुनियाभर के वाद कभी न कभी ग्रूप में बट जाता है, सिकुड जाता है, संकीर्ण हो जाता है। एक मात्र वाद ऐसा है जिसको गोस्वामीजी परमार्थवाद कहते हैं। वादियों का एक ग्रूप हो जाता है। एक लक्ष्मणरेखा लग जाती है। और मुमुक्षों को भी बंधन महसूस होने लगता है। लेकिन वाद यद्यपि 'गीता' में विभूति कहा है। नारद के पथ पर चले तो नारद 'भक्तिसूत्र' में स्पष्ट कर देते हैं, आदमी को वाद का अवलंबन नहीं करना चाहिए। यद्यपि वहां तर्क-वितर्क आदि की बात होगी।

कविवर रवीन्द्रनाथ टागोर की एक बड़ी प्रसिद्ध कविता है 'गीतांजलि' की। जहां ज्ञान मुक्त हो। जहां व्यक्ति का मस्तिष्क गौरव से ऊंचा हो। जहां ये दुनिया छोटी-छोटी दीवारों से विभक्त न होती हो। जहां व्यक्ति के मुख से निकला शब्द सत्य की गहराई से प्रकट होता हो। टागोर प्रार्थना करते हैं कि हे परमात्मा, ऐसे स्वतंत्रता के स्वर्ग में मुझे ले चल।

तो, मेरे भाई-बहन, परमारथवादी, जिनकी सात बातें।

अज महेस नारद सनकादी ।
जे मुनिबर परमारथबादी ।।

वाद में संख्या होती है कि हमारे ग्रूप में कितने लोग! सात भी हो सकते हैं; सात सौ भी हो सकते हैं; सात हजार भी हो सकते हैं; सात लाख भी हो सकते हैं। लेकिन सीमित है। लेकिन ये परमारथवाद जो है, यद्यपि उसको वाद कहना ठीक नहीं है, फिर भी पहचानने के लिए शब्द का प्रयोग करना आवश्यक बन गया। परमारथवादी वितंडा वादी नहीं है। वितंडावादी के लिए गोस्वामीजी ने संकेत किया -

बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी ।
कहहिं परस्पर मिथ्याबादी ।।

एक था कुरुवाद, एक था पांडववाद, समझ लो। यद्यपि मूल में सब एक थे, लेकिन वाद ने दो भाग में बांट दिए। कुरुवाद, संख्या सौ; पांडुवाद, संख्या पांच। इस वाद से प्रकट हुआ महाभारतीय संघर्ष। परमारथरूप परमात्मा कृष्ण पूर्णरूपेण साथ होने के बाद भी उपलब्धि क्या हुई? क्योंकि वाद विघटन कराता है।

सूक्ष्म को समझाने के लिए स्थूल का आश्रय लेना ही पड़ता है। मुझे व्यासपीठ से उतरना है तो उड़कर नहीं उतरूंगा। इस स्थूल का आधार लेना पड़ेगा, तभी मैं यहां से ऊतर पाउंगा। इन्द्र स्वार्थी है, ये परमारथवादी नहीं है।

भगवान उनके लिए वनवासी हुए है। फिर घमासाण युद्ध रावण के सामने शुरू होता है। ये आदमी रथ ओफर नहीं कर रहा है! मेरे ठाकुर नंगे पैर है! ये तो अच्छा हुआ कि प्रभु ने धर्मरथ की स्थापना कर दी। प्रभु एक आध्यात्मिक रथ उतारते हैं। लंका के रणांगण में धर्मरथ का अवतरण 'रामचरित मानस' में हुआ।

सौरज धीरज तेहि रथ चाका ।
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ।।

धर्मरथ मानी सत्यरथ। धर्मरथ मानी प्रेमरथ। धर्मरथ मानी करुणारथ। लेबलमुक्त धर्म। और लेवलयुक्त धर्म। साधु लेबल से नहीं पहचाना गया, इस देश में लेवल से पहचाना गया। इसका भजन कितना परिपक्व है? 'महाभारत' में अर्जुन के रथ के कृष्ण सारथि बने। ये कलियुग है। कृष्ण तो नहीं दिखता है तो हमारे जीवनरथ का सारथि कौन बनेगा? तो, तुलसी ने बहुत प्यारा संबोधन किया कि कलियुग में हमारे जीवनरथ का सारथि -

इस भजन सारथी सुजाना।

फिर आप भजन में 'नमः शिवाय' बोलो, गायत्री मंत्र बोलो, 'हरिहरि' बोलो, लेकिन इश का भजन कलियुग में साधकों के धर्मरथ का सारथि बनेगा।

कवच अभेद बिप्र गुर पूजा ।
एहि सम बिजय उपाय न दूजा ।
सखा धर्ममय अस रथ जाकें ।
जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें ।।

तो, भगवान के पास तो रथ नहीं है। बिनुपदत्राण है प्रभु। स्वार्थवादी इन्द्र रथ की ओफर नहीं करता! लेकिन जब उसको लगा कि युद्ध तो किनारे तक पहुंचने की तैयारी है। मेरे कोई सहयोग के बिना जीत जायेगा और फिर मेरा सिर शरम से झूक जायेगा! इसलिए स्वार्थवादी इन्द्र सारथि के साथ स्वर्ग से रणभूमि पर रथ भेजता है। गोस्वामीजी आदर के साथ इस रथ का वर्णन करते हैं -

तेज पुंज रथ दिब्य अनूपा ।
हरषि चढ़े कोसलपूर भूपा ।।

एक भूप चढ़ा। उदासीन राम को रथ में बैठने की मनाई थी, इसलिए तुलसी के शब्दप्रयोग देखिए! राजाधिराज, भूप चढ़े। एक सुकवि विवेक को कितना बरकरार रखता है? मैं नीतिनभाई के बारे में कहूं तो, जहां-जहां रामकथा होती है उनका सारसंक्षेप रामकथा के रूप में, प्रसाद के रूप में वितरीत किया जाता है। ये मैं देख लेता हूं। तो मुझे पता लगता है कि बहुत विवेकपूर्ण संपादन होता है। वर्ना एक शब्द इधर-उधर हो जाय तो कितनी गडबडी हो सकती है। इसलिए नीतिनभाई और उनकी पूरी टीम बहुत-बहुत माँ गंगा के आशीर्वाद प्राप्त करे। सब बिना हेतु काम करते हैं। सर्जक का एक अपना विवेक भी होता है। और भगवान राम का विवेक भी देखिए! कोई जिद्द नहीं कि तूने पहले क्यों नहीं भेजा? प्रसन्नता से स्वीकारे। मैं आप-से निवेदन ये कर रहा हूं कि एक कुरुवाद, एक पांडुवाद दोनों गये थे परमारथरूप कृष्ण के पास युद्ध आरंभ हो इससे पहले, लेकिन दुर्योधन ने भगवान कृष्ण की सेना को पसंद किया और अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण को पसंद किया। ओशो का एक बड़ा प्यारा वक्तव्य है, मैंने पढ़ा था कि अर्जुन चरण के पास बैठ गया, दुर्योधन सिर के पास बैठा। कृष्ण सोये है। भगवान कृष्ण जागे और पहली दृष्टि अर्जुन पर पड़ी। उसी समय युद्ध जीत लिया गया था। औपचारिकता बाकी थी। आदमी जब शरणागत होता है तब जीवन जीत जाता है। फिर तो औपचारिकता ही रहती है। खाना है, पीना है, सोना है। देहधारी को अपने देहधर्म निभाने होते हैं।

तो, मेरे भाई-बहन, 'महाभारत' के युद्ध की उपलब्धि क्या? मेरी जितनी समझ इतना कहूंगा कि बच्चों, नीति समझनी है तो 'महाभारत' और प्रीति समझनी है तो 'रामचरित मानस' पढ़ो। 'रामचरित मानस' प्रीति का शास्त्र है।

पुण्यं पापहरं सदा शिवशंकर विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बपूरं शुभम् ।
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः ।।

शास्त्र का एक नियम है कि कोई भी ग्रंथ हो तो इसमें आदि, मध्य और अंत में ग्रंथ का मुख्य विषय प्रतिपादन करना पड़ता है। 'रामचरित मानस' का मुख्य सार है, मुख्य तत्त्व है प्रेम। इसलिए तो मैं रामकथा को प्रेमयज्ञ कहता हूं, ज्ञानयज्ञ नहीं कह सकता। मैं आप-से ये निवेदन करना चाहता हूं कि आखिर उपलब्धि क्या? जानने में कहीं मूल तत्त्व खो न जाय! और जीवन एक उदासी से भर लेता है। यदि हम एक सूत्र पकड़ लेते हैं तो जीवन जीना केवल औपचारिकता बन जाती है, बात खतम हो जाती है।

एक श्रोता ने प्रश्न पूछा है, 'बापू, ब्रह्म का परमअर्थ क्या है? नीति का परमअर्थ क्या है? प्रीति का परमअर्थ क्या है? और स्वार्थ का परमअर्थ क्या है?'

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु ।
कोउ न राम सब जान जथारथु ।।

इन वादों के द्वैत में बीच में खड़ा परमारथ तत्त्व चुका जा रहा है। जिसको इसी जीवन में परमरस को पा लेना हो-

प्रेमरस पाने तुं मोरना पिच्छघर
तत्त्वनुं टूंपणुं तुच्छ लागे।

इसलिए मैं कथा को प्रेमयज्ञ कहता हूं। मैं आप-से ये कहना चाहता था कि उपलब्धि क्या? आखिर में क्या मिला? मासूम गाज़ियाबादी का शे'र है कि -

कभी तूफ़ां कभी कश्ति कभी मज़धार से यारी।
किसी दिन लेके डूबेगी तेरी ये सभी होंशियारी।

तो, आखिर उपलब्धि क्या? कहीं मूलतत्व तो नहीं चुका जा रहा है? तो मेरे भाई-बहन, परमारथरूप परमात्मा उसके बारे में बिलग-बिलग एंगल से चिंतन करनेवालें मनीषीगण, कोई परमारथवादी है, कोई

द्वैतवादी है, कोई अद्वैतवादी है, कोई विशिष्ट अद्वैतवादी है। ये तो बड़ी कठिन-जटिल चर्चा है! हम तो केवल बस, प्रेमयज्ञ में बैठे है।

राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं ।
अनइच्छित आवइ बरिआईं ।।

जो हरि भजेगा उसका पीछा छाया की तरह मुक्ति करेगी। लेकिन वाद-विवाद में गये तो समय गया!

बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी ।
कहहिं परस्पर मिथ्याबादी ।।

बालक मानी सूर्य। तुलसी कहते हैं, परस्पर मिथ्यावादियों का कथन है। मिथ्यावादी कहते हैं, सूरज घूमता है। ये ग्रह, नक्षत्र नहीं घूमते। ये तो अपनी जगह है। ये तो मिथ्यावादी का निवेदन है। बहुत साल पहले तुलसी ने बहुत वैज्ञानिक सूत्र रखे हैं। तुलसी का एक सूत्र है -

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा ।

ये आध्यात्मिक सूत्र है पहला कि जब तक आदमी को अपना निजसुख नहीं मिलेगा, तब तक मन स्थिर नहीं होगा। तुम निजसुख को उपलब्ध होओ। मन अपने आप स्थिर हो जाएगा।

परम कि होइ बिहीन समीरा ।

कोई व्यक्ति किसी को स्पर्शे, यदि हवा न हो तो स्पर्श कर सकता है? जहां हवा खत्म हो जाती है, वहां स्पर्श असंभव है। इसलिए जो स्पेस में जाते हैं वो तैरते हैं। ये वैज्ञानिक सत्य है।

तो, मेरे भाई-बहन, परमारथ तत्त्व ये परमतत्त्व है। उसको माननेवाले महापुरुष परमारथवादी कहलाते हैं। आज के जैसी वाद की बात यहां नहीं है। फिर भी वाद वाद है। साहब, हाथी के एक-एक अंग देखने से हाथी सिद्ध नहीं होता। अंधे लोगों का निर्णय है! कोई कहे, खंभे जैसा है। कोई कहे, सूप जैसा है। ऐसे कहां निर्णय होगा? समग्र की समझ हो तो तत्त्व निर्णय कर सकता है। उसीसे सिद्ध होता है। ये मेरा अनुभव है। तो वादों ने बड़ा संघर्ष पैदा कर दिया है। जो तत्त्वतः इस जगत को परमात्ममय अनुभव करता है वो किससे विरोध करे? नरसिंह मेहता कहता है -

सकल लोकमां सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे।

तो, परमारथवादी महापुरुषों तो तत्त्वनिर्णय में लगे हैं। उसकी मेहफिल का एक मात्र सब्जेक्ट होता है परमतत्त्व का निर्णय हो; परमतत्त्व सिद्ध हो। तो राम ब्रह्म है। ब्रह्म मानी आखिरी तत्त्व। और जान लिया वो बोलते बंद हो गए! तुलसी ने कह दिया, जानने के बाद भी कुछ लोग बोले हैं, क्योंकि 'तदपि बोले बिनु रहा न कोई।'

स्वारथ का परम अर्थ 'रामायण' में लिखा है -

स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा ।
मन क्रम बचन राम पद नेहा ।।

सबसे बड़ा परम स्वार्थ वो है जीव का कि मन-कर्म-वचन से हमारा मन राम के चरणों में स्थिर हो जाय। इससे बड़ा स्वार्थ कोई नहीं। ये परमस्वार्थ है। और परमारथ का परम अर्थ -

सखा परम परमारथु एहू ।
मन क्रम वचन राम पद नेहू ।।

'हे सखा, परम परमारथ ये है, मन-वचन-कर्म से रामनाम।' सब अपने-अपने वाद पर अड्डा लगाकर बैठ जाय तो फिर विपक्ष ही होगा! और जिन्होंने रामपद जाना वो किसके साथ विरोध करे? रहीम का एक दोहा है -

रहिमन दोष न कीजिए कोई कहे, क्यूं है?
हंसकर उत्तर दीजिए हां बाबा, यूं है।

'मानस' की एक दूसरी पंक्ति -

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु ।
कोउ न राम सम जान जथारथु ।।

गोस्वामीजी कहते हैं, चाहे नीति हो, प्रीति हो, स्वारथ या परमारथ हो; क्योंकि तत्त्व निर्णय तो यथार्थ होना चाहिए। इन चारों को राम के समान यथार्थ रूप में जाननेवाला कोई नहीं। यथार्थरूपेण नीति जाननेवाले राम एक है। तो, भगवान राम पहले सूत्र नीति को यथार्थ रूप में जान गए। राम कौन-कौन नीति को यथार्थ जानते थे, कौन-कौन नीति को राम ने समर्थन किया, कौन-कौन नीति के समय राम बीच में बोले हैं, नीति संपादित करने के लिए ये पूरा एकदम विशद विषय बन जाता है।

युवान भाई-बहन, मैं आप-से निवेदन करूं कि हमारे यहां तीन ग्रंथ कहीं मिल जाय तो थोड़ा-थोड़ा पढ़ना। 'महाभारत' अंतर्गत विदुरनीति। ताकि नीति क्या है ये पता लगेगा। वहां से नीति क्या है ये समझने के बाद रामदर्शन करोगे तो पता लगेगा कि ये सब नीति राम यथार्थ जानते थे। दूसरा राजर्षि, नाथ संप्रदाय के महापुरुष भर्तृहरि, उसका 'नीति शतक' पढ़ना। 'वैराग शतक' और 'शृंगार शतक' जरा संभलकर पढ़ना। भर्तृहरि कहते हैं, दुनिया में दो ही जगह विश्राम है। इसमें एक गंगा के किनारे ही विश्राम है, वो दु:खहारिणी है। और दूसरा शृंगार की ओर चर्चा करनी जरूरी नहीं। सुरुचिभंग हो जाएगा। लेकिन सम्यक् चित्त हो तो पढ़ लेना। हां, सम्यक् चित्त हो तो 'कुमार संभव' भी पढ़ने जैसा है। लेकिन सम्यक् चित्त हो तो।

तीसरे ग्रंथ की ओर निर्देश, 'चाणक्यनीति।' 'धर्मे तत्परता मुखे मधुरता ...' ग्यारह लक्षण बतायें नीति के। 'चाणक्यनीति' राम में मिलाओ। ये राम कितनी नीति जानते थे? चाणक्य अपने नीतिसूत्रों में कहते हैं कि ये ग्यारह लक्षण ऐसे नीतिवान के होते हैं। पहला लक्षण, जिसकी धर्म से तत्परता; आलस ना हो, प्रमाद ना हो। आलस मृत्यु का पर्याय है। भरतजी तत्पर है राम के दर्शन करने। राजगादी की बाद में चर्चा हो। प्रात:काल पूरी अयोध्या को लेकर राम के दर्शन करने जाऊं चित्रकूट। 'धर्मे तत्परता'; परमात्मा इस नीति को यथार्थ जानते हैं, करके दिखाते हैं। नीतिकार कहते हैं, 'मुखे मधुरता', जिसके मुख में मधुरता हो। बोले मीठे बोल, शहद घोल दे हमारे कानों में। भगवान राम बोले तो पहले मुस्कुराहट करके बोले। किसीको दान देने में उत्साह हो। दानेश्वर को उत्साह होना चाहिए। राम का उत्साह दान देने में! 'बाप, मेरे लिए तुझे न दूं ऐसी कोई चीज नहीं। तू मांग, विलंब न कर।' 'दान शिरोमणि' तुलसी ने कहा।

रामकथा क्या है? रामकथा समग्र जीवमात्र का भोजन है। इसमें सभी व्यंजन परोसे जा रहे हैं। कभी तत्त्व का, कभी सत्य का, कभी नीति का, कभी प्रीति का, कभी परमारथ का, कभी स्वार्थ का, कभी सांख्य का, कभी न्याय का, सभी व्यंजन है। छप्पन भोग है ये। लेकिन भोजन करने के बाद दक्षिणा देनी चाहिए, हमारी परंपरा है। तो, कथा में आप लोग बैठे हो। भोजन है, महाप्रसाद, लेकिन दक्षिणा है कथा के अंत में एक मिनट जो संकीर्तन होता है, ये दक्षिणा है। कथा पूरी हो, संकीर्तन शुरू हो तो तब दक्षिणा दिए बिना मत जाना।

गांव में कथा होती है तो बाद में आरती की थाली घूमती है। सब लोग उसमें एक-दो आने डालते हैं। एक लोभी बैठा था। इनमें दान की कोई उत्सुकता नहीं थी। महाराज ने उसी दिन तीन घंटे दान पर प्रवचन किया। लोभी को हो गया कि एक रुपिया का दान दे दूं। जेब से निकाले और मुठ्ठी में रखे। दूर बैठा था। आरती घूमते-घूमते थाली गई। दस मिनट हो गई। गरमी के दिन। हथेली में पसीना हुआ। आरती निकट आई। हथेली खूली तो रूपिया पसीने के कारण थोड़ा भीगा हुआ। लोभी को हुआ, अरर्र, बेचारा मुझसे बिलग होने के कारण रो रहा है! मैं नहीं दूंगा। और जेब में रख दिया! दान का मतलब रूपिया देना ही नहीं, उसको सुविचार दो वो भी दान है। दान न करो तो कोई बात नहीं, लेकिन धर्म के द्रव्य का दुरुपयोग न हो जाय उसका ध्यान रखना।

जिस दीये में हो तेल खैरात का,
उस दीये को जलाना नहीं चाहिए।
- शहूद आलम आफ़ाकी

दान में उत्साह। भरत मागे इससे पहले राम देते हैं।

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्हीं।
सादर भरत सीस धरि लीन्हीं।।

खलील जिब्रान को कहा कि आपकी दृष्टि में श्रेष्ठ दान क्या? तो कहे, सबसे दान श्रेष्ठ है जो खुद को दे देता है। राम ने क्या किया? पादुका दी; खुद को दे दिया। मैत्री में छल नहीं; ऐसी राम की मैत्री। सुग्रीव के साथ मैत्री की ठाकोरजी ने तब छल नहीं, तब मित्राष्टक गाया गया। आठ पंक्ति में मित्र के लक्षण बताये गए। विभीषण को सखा बनाये। युवराज को सखा बनाये। गुरु के चरणों में विनय; राम की गुरुचरण प्रीति 'मानस' में कोई देखे। जब गुरु वशिष्ठ रामजी को खबर देने आये, कल आपका राज्याभिषेक होनेवाला है, तब उनकी गुरुभक्ति प्रकट हुई। 'महाराज, सेवक के घर स्वामी का आगमन! मैं तो आपका सेवक हूं। और सेवक के घर स्वामी का आगमन सदैव मंगलरूप होता है।' गुरुनिष्ठा; आचारे शुचिता; व्यवहार में पवित्रता; राम का आचरण। गुणे रसिकता; शबरी ने कहा, मुझमें कोई गुण नहीं। मैं जातिहीन हूं। मैं अधम हूं। लेकिन राम कहते हैं-

कहे रघुपति सुनु भामिनि बाता।
मानउ एक भगति कर नाता।।

चाणक्य कहते हैं, जिसको शास्त्र का ज्ञान हो। राम में शास्त्र का ज्ञान -

वेदपुराण वशिष्ठ बखानी।
सुनहि राम जदपि जानी।।

रूपे सुंदरता; राघव का क्या रूप है!

कंदर्प अगणित अमित छबि। नवनील नीरद सुंदरम्।
नव कंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुणं।

शिव भजनता; शंकर का भजन करना। मेरा राम शिव का भजन करता है। तो, राम में सब चरितार्थ है। और प्रीति को जाननेवाला केवल राम है। प्रीति को राम जानते हैं। परमारथरूप है। और क्या-क्या जानते हैं, 'दोहावलि' के कुछ दोहे पढ़ लीजिए।

तो, यथार्थरूप में ये चारों राम जितना जानते हैं इतना कोई नहीं जानता। जिसका मतलब हुआ जिन्होंने परमार्थ का यथार्थ निर्णय कर लिया, वो राम हो कि राम का कोई शरणागत हो; वो नीति-प्रीति को यथार्थ जानेगा; ये स्वार्थ को भी समझेगा और ये परमार्थ को भी समझेगा।

मिथिला में राम ने दो पहर का भोजन किया। विश्राम किया। शाम को राम की उम्र के समवयस्क थे वो रामदर्शन के लिए ताकते रहे। लक्ष्मण जीवाचार्य है। उसने उनकी मन की गति जान ली। भगवान राम ने सोचा, ये लोग अंदर नहीं आ पायेंगे, लेकिन मुझे ही राजमारग पर जाना चाहिए। भगवान राम ने युक्ति की। विश्वामित्रजी से निवेदन किया, 'नाथ लखनु पुरु देखन चहही।'

दोनों भाई नगरदर्शन के लिए जाते हैं। यहां तीन प्रकार के दर्शक दिखाई गये। बालकवृंद तो साथ में है ही और मिथिला के पुरुष सब ज्ञानी है। मिथिला की स्त्रियां अटारी से राम की झांकी कर रही है। मैंने संतों से सुना है, ये पुरुष देख रहे हैं वो ज्ञानरूप है, इसीलिए कुछ बोलते नहीं है। धीरगंभीर! ये स्त्रियां है, भक्तिरूपा है। इसलिए अंदर-अंदर चर्चा करती है। भक्ति तो परस्पर गीत गवायेगी, चर्चा करायेगी। भक्तिरूपी स्त्रियां रस लेती है रामदर्शन के लिए। अटारी से फूल फेंकती है ताकि राम पर पड़े और राम उपर देखे और राम के दर्शन हो जाय। फूल से निमंत्रण दिया गया। एक संत कहते थे, फूल नहीं, अपना सुमन। अपना सुंदर मन भेंट कर रही थी। बिलग-बिलग महिलायें अपनी रुचि के अनुसार रामदर्शन करती है। भगवान राम पूरी मिथिला को नाम-रूप में डूबोकर रंगभूमि में गए, जहां धनुषयज्ञ होनेवाला है। अपने समवयस्क को संतुष्ट करके भगवान राम लौट आए। ब्रह्मचर्चा हुई। ब्रह्म गुरुभक्ति को जगत में दिखाने के लिए विश्वामित्र के चरण की सेवा कर रहे हैं। दूसरे दिन राम-लखन गुरुपूजा के लिए पुष्प चुनने के लिए जनक की पुष्पवाटिका में जाते हैं। जानकीजी गौरीपूजा के लिए आती है। एक सखी राम की चर्चा करती है। सखी का अनुगमन करती सीता राम का दर्शन पाती है। और गौरीमंदिर में जाकर स्तुति करती है।

पार्वती प्रेमवश हुई। मूर्ति मुस्कुराई। प्रसादी का हार दिया, बोली, 'सीया, तुम्हारे मन में जो सांवरा बस गया वो तुम्हें मिलेगा।' गौरी का आशीर्वाद प्राप्तकर सीताजी घर आती है। यहां राम-लखन गुरु की पूजा के पुष्प लेकर आते हैं। उसके बाद धनुषयज्ञ संपन्न हुआ। भगवान ने क्षण के मध्यभाग में धनुष तोड़ा। जानकी ने जयमाला पहनाई। परशुराम बाबा आये। परमात्मा के प्रभाव को देखकर परशुराम अवकाश प्राप्त कर लेते हैं। पत्र लेकर दूत अयोध्या गए। महाराज बारात लेकर आए। चारों भाईयों का चारों राजकन्या के साथ ब्याह हुआ। बहुत दिन मिथिला में बारात रुकी। जान विदाई हुई। मुकाम करते-करते बारात अयोध्या पहुंची। दिन बितने लगे। महेमानों ने विदाई ली। आखिरी विदाई विश्वामित्र की आई। बाबा निकले। पूरा परिवार सरजू के तट पर -

नाथ सकल संपदा तुम्हारी।
मैं सेवकु समेत सुत नारी।।

'हे नाथ, ये सब संपदा आपकी दी हुई है। मैं परिवार के साथ आपका सेवकमात्र हूं।' एक संत से क्या मांगना चाहिए ये तुलसी जगत को बता रहे हैं, 'आपको भजन और साधना में अवकाश हो और हमारी याद आए तो हमें दर्शन देते रहना।' असाधु आता है तो दुःख देता है, साधु

परमारथ तत्त्व ये परमतत्त्व है। उसको माननेवाले महापुरुष परमरथवादी कहलाते हैं। आज के जैसी वाद की बात यहां नहीं है। हाथी के एक-एक अंग देखने से हाथी सिद्ध नहीं होता। ये अंधे लोगों का निर्णय है! कोई कहे, खंभे जैसा है। कोई कहे सूप जैसा है। ऐसे कहां निर्णय होगा? समग्र की समझ हो तो तत्त्व निर्णय हो सकता है। उसीसे सिद्ध होता है। ये मेरा अनुभव है। तो वादों ने बड़ा संघर्ष पैदा कर दिया है। जो तत्त्वतः इस जगत को परमात्ममय अनुभव करता है वो किससे विरोध करे? परमारथवादी महापुरुषों तो तत्त्वनिर्णय में लगे हैं। उसकी मेहफिल का एक मात्र सब्जेक्ट होता है परमतत्त्व का निर्णय हो; परमतत्त्व सिद्ध हो।

व्यासपीठ का योग प्रेमयोग है

मानस-परमारथ : ९

आज (ईक्कीस जून) पूरी दुनिया जानती है, वैश्विक 'योग दिवस' है। इस महिमावंत दिन के अवसर पर भगवान शिव, जो त्रिभुवन गुरु है, उस कैलासपति के चरणों में प्रणाम करता हुआ; इस परमयोगी भगवान महादेव, तत्पश्चात् जिसको हम योगेश्वर कहते हैं ये जगद्गुरु श्रीकृष्ण, जिन्होंने राजयोग विश्व को दिया, आज के पावन दिन पर मैं भगवान कृष्ण के चरणों में प्रणाम करूं। इसी परंपरा में मुख्य-मुख्य पुण्य श्लोक नाम लेकर परमयोगगुरु भगवान पतंजलि, उसको प्रणाम करूं और शिव से लेकर आज तक प्रसिद्धि में रहे हो, ना रहे हो; जो हुए हैं और जो भविष्य में आगे होंगे, इन सबको व्यासपीठ से मैं प्रणाम करता हूं।

पूज्य रामदेवबाबा और आचार्य बालकृष्णजी का 'योग विश्वकोश' कल लोकार्पित हुआ दिल्ही में। इसलिए योगगुरु बाबा रामदेवजी को मैं यहां से आदर के साथ, प्रणाम के साथ स्मरूं, साधु। इसी शृंखला में भारत के प्रधानमंत्री आदरणीय मोदीसाहब को भी भूरीशः वधाई। जो आदमी ने यूनो में 'योगदिन' के लिए बात कहकर प्रेरणा दी दुनिया को। हम सबके लिए पूरा गौरव का दिन है बाप! और शंकर को भी हम पिता कहते हैं। भगवान शिव से लेकर सभी बाबाओं को मैं प्रणाम करूं।

ये किसी सियासत का दिन नहीं है, ये हमारे शिव का दिन है। मैं प्रार्थना करूं मेरे सभी देशवासियों को किसी कारणवश जो इसमें रस न ले पाये, या तो कोई भी कारण अल्लाह जाने! वो चिंतन करे और आज नहीं तो महिने के बाद भी योगदिन मनाये! इस संस्कृति के है वो आप बदल नहीं सकोगे। तुम गंगा की सेवा में सहयोग नहीं करोगे, तुम गाय की सेवा में सहयोग नहीं करोगे, तुम योग और ब्रह्मविद्या की सेवा में सहयोग नहीं करोगे तो अपने हाथ ही अपना नुक्सान करोगे! छोटी-बड़ी बातें छोड़ दो! जीवन भारत में मिला है, भारत का गौरव करो। विदेशी भाई-बहनों को धन्यवाद देता हूं! कई देशों में आज 'योगदिन' मनाया गया है। दो खुशियां; मेरा मनोरथ था कि राष्ट्रपति भवन में गाय हो। आप ने खोज की, खबर मिली की नब्बे गाय है। मैंने पांच गीर गाय देने की बात की। आपके आशीर्वाद से अभी मुझे सूचना मिली है कि पांच गाय ओलरेडी राष्ट्रपति भवन में प्रवेश कर चुकी है। और वो गौमातायें आज राष्ट्रपति भवन की लोन में घूम रही है। मैं मेरी व्यासपीठ से राजपीठ का शुक्र अदा कर रहा हूं। हम शुक्रगुज़ार है। हम फकीरों की बात आपने कुबूल की। भारतीय संस्कृति कायम टिकेगी। एक-दूसरी खुशी; मैंने फोन किया, हमारे 'कैलास गुरुकुल' में जयदेव को पूछा कि तुझे योग आता है? बोले, थोड़े आसन आते हैं। मैंने कहा, कल 'कैलास गुरुकुल' में हमारे जितने छात्र हो उसको पांच मिनट जितना हमें आये उतना योग सिखाना। आज सुबह मैंने भी एक मिनट प्रयोग किया। आता तो नहीं कुछ! मैंने मेरे हनुमानजी से कहा, मानी लेजो! आज मेरे देश का गौरव का दिन है।

जिसको दुनिया महासत्ता कहती है उनमें से एक महासत्ता के आदरणीय प्रेसिडन्ट भी अपनी जेब में हनुमानजी लेकर घूम रहा है, बराक ओबामा। ऐसा मैंने अखबारों में पढ़ा है। कौन बल देगा उसके बिना? कौन विद्या

देगा उसके बिना? कौन बुद्धि देगा उनके बिना?

बल बुद्धि बिद्या देहु मोहिं,
हरहु कलेश बिकार ।।

हिन्दुस्तान का आदमी अभय होना चाहिए। हम गंगा के तट पर बैठे हैं। मुझे समझ में नहीं आता, कब तक हम प्रपंच और नकाब में रहे! खैर, परमात्मा सबको अवसर दे! बाप, मैंने कल दिल्ही में भी कहा कि आधि हो, व्याधि हो, उपाधि हो, योग मिटा देती है और समाधि उपलब्ध करा देती है। ये जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है। समाधि का अर्थ है समाधान। आदमी को पूर्णत: अंदर से जवाब मिल जाय, एक डकार आ जाय, एक तसल्ली आ जाय। जैसे तुलसी कहते हैं-

पायो परम विश्राम, राम समान प्रभु नाही कहूँ।

तो, 'मानस-परमारथ', आज आखिरी दिन, संक्षेप में कथादर्शन। किसी बुद्धपुरुष के पास कभी बैठो, पांच मिनट सन्नाटे के साथ बैठो। जाओगे तब लगेगा, मानो मैंने नहा लिया! योग क्या करता है? दिल शुद्ध करता है, देह शुद्ध करता है और आदमी का दिमाग भी। और आज मुझे लग रहा है ऐसे ही चला तो प्रसन्नता, आरोग्य, विद्या, बल-बुद्धि ये 'संभवामि योगेयोगे।'

दूसरा सोपान 'अयोध्याकांड।' गोस्वामीजी लिखते हैं-

यस्याङ्के च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।

मैंने संतों से सुना कि 'बालकांड' यदि व्यक्ति की बाल्यावस्था मानी जाय तो 'अयोध्याकांड' है युवावस्था। ब्रह्मलीन पूज्यपाद डोंगरेबापा भी कहते हैं, 'अयोध्याकांड' है यौवन का कांड। युवान भाई-बहन, खास करके जब युवानी आये, तुम्हारे जीवन का दूसरा सोपान शुरू हो तब शिवस्तुति जरूर करना। शिव नितांत आवश्यक है यौवन के शील पर। इसलिए तुलसी ने शिवस्तुति की। लेकिन अकेले शिव नहीं, कितने-कितने रस एक श्लोक में डाल दिए! शायद तुलसी कहना चाहते हैं हे युवक, युवानी में तेरी शादी होगी, तेरी पत्नी भी तेरे पास बैठी होगी; तो शिव और पार्वती जैसा दांपत्य बनाना। हे युवक, युवानी में विवेक की गंगा मस्तिष्क में रखना। विवेक मत चुकना। शंकर के भाल में बालचंद्र है। हे युवक, तेरा ललाट-तेरा भाल तेजस्वी हो, सुशोभित हो। और दूज का चांद निष्कलंक होता है। पूर्णिमा के चांद में कलंक दिखता है। तेरा विचार, तेरा चिंतन निष्कलंक हो, पवित्र हो।

महादेव के कंठ में ज़हर है। हे युवक, तुझे युवानी में ही अपवाद का ज़हर पीना पड़ेगा। और 'रामचरित मानस' के आधार पर कहूं तो जीवन में आती विषम परिस्थिति ही विष है। और वो विष शंकर की तरह पच जाएगा; जो राम के साथ जोड़ोगे तो विष+राम, विश्राम हो जाएगा। राम में मेरा कोई आग्रह नहीं संकीर्णता के साथ। राम मानी परम, जो भी बोलो। तो, ज़हर पीना पड़े तो महादेव को याद करना। सुंदर आभूषण पहनो, लेकिन युवक, विवेक का ध्यान रखना कि ये भूषण भुजंग न बन जाय! भुजंग बनके तुझे डंसे ना! संपत्ति विपत्ति न बन जाय। अतिरेक तुम्हें खा न जाय। गुजराती में एक पंक्ति है -

जे पोषतुं ते मारतुं, एवो दीसे क्रम कुदरती।

कवि कलापी की कविता। जो पोषण करता है, अतिरेक होने के बाद ये पोषक तत्त्व ही आदमी को मार देता है! शरीर पर भगवान ने भस्म लगाई है! युवान, तेरे शरीर पर इत्र छिड़कना। सौंदर्य प्रसाधन तू मौज कर, लेकिन याद रखना कि यही देह एक बार भस्म होनेवाला है, ये स्मरण बना रहे।

दूसरे मंत्र में भगवान राम को राज्याभिषेक होनेवाला है, ये सुनके प्रसन्नता न हुई और दूसरे ही दिन वन की बात हुई तो ग्लानि न हुई। दोनों प्रसंग में जिसकी प्रसन्नता बरकरार रही। हे युवक, कभी तू परीक्षा में सफल हो जाएगा तो इतना हर्षित भी मत होना, फेइल हो जा तो ग्लानि भी मत करना। जीवन में ये सब हार-जीत तो होती ही रहेगी। सत्संग से विवेक आएगा। तीसरा मंत्र -

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्।।

तीसरे मंत्र में राघव की वंदना की है और 'अयोध्याकांड' का आरंभ-

श्री गुरु चरण सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु, जो दायक फल चारि।।

मुझे तो यही कहना है कि युवानी का प्रारंभ हो तब किसी बुद्धपुरुष की चरणरज सिर पर धारण कर लेना। किसी बुद्धपुरुष के आश्रय के मार्गदर्शन में रहना। चाहिए कोई गुरु, जो हमारे मन को ठीक रखे, हमारी बुद्धि को, कौशल्य को विकसित करे और ये सब होने के बाद हम अहंकारी न बन जाय उसका ध्यान रखे। गुरुवंदना की। उसके बाद 'अयोध्याकांड' की पहली पंक्ति चौपाई के रूप में -

जबतें रामु ब्याहि घर आए।
नित नव मंगल मोद बधाए।
रिधि सिधि संपति नदीं सुहाई।
उमगि अवध अंबुधि कहुँ आई।

जब से राम ब्याहकर आये हैं अयोध्या में सुख की वर्षा हो रही है। वर्षा अच्छी वस्तु है, लेकिन अतिशय विनाश कर देती है। इसी अयोध्या को अब रामवनवास की पीड़ा आनेवाली है। दशरथजी ने दर्पण में अपने सफेद बाल देखकर निर्णय किया। गुरुजी ने हां कह दी और राम को कल राजतिलक करने की उद्घोषणा हुई। फ़िर देवताओं ने सरस्वती को तैयार की। सरस्वती ने मंथरा की बुद्धि घुमाई और आखिर में रामराज्याभिषेक रुक गया और चौदह साल का वनवास मिला।

राम-लक्ष्मण-जानकी तीनों उदासीन व्रत लेकर निकल पड़े। पूरी अयोध्या पीछे। तमसा के तट पर गये। रात में सब सो गये। भगवान रथ लेकर निकल गए। शृंगबेरपुर पहुंचे। सुबह जागने के बाद पूरी अयोध्या रोती हुई लौट आई। शृंगबेरपुर में गुहराज ने सन्मान किया। एक रात्रि मुकाम हुआ। दूसरे दिन प्रभु ने जटाबंधन किया। नौकावालों को बुलाया। केवट ने चरण धोये। फिर नौका में बिठाया। केवट बोले, प्रभु, गंगा के तट पर हमारी पीढियां खत्म हो गई, लेकिन तुम्हारा कहलानेवाला एक उच्च समाज हमारे बापदादा का तर्पण कराने आया ही नहीं! आप कराये। इसलिए तुलसी लिखते हैं -

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार।।

ये क्रांति थी। इसलिए 'रामायण' के मनीषीलोग तो कहते हैं कि रामराज्य की स्थापना तो शृंगबेरपुर में हो चुकी थी। श्रीगणेश वहां हुआ था। भगवान गंगापार हुए। भरद्वाजजी के आश्रम में गए। वहां से यात्रा करते वाल्मीकिजी ने आश्रम में मार्गदर्शन पाकर प्रभु चित्रकूट आए। पूरी अयोध्या विरह में डूबी है। सुमंत आए। सुमंत ने सब कथा सुनाई।

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम।।

तुलसीजी कह रहे हैं, महाराज दशरथजी अंत समय छ: बार 'राम' शब्द का उच्चारण करते हैं। क्यों? कहते हैं, दशरथजी का राम-वियोग का छठ्ठा दिन है, इसलिए छ: बार। एक संत कहे, नहीं, दशरथजी ज्ञान की छठ्ठी भूमिका पर थे इसलिए छ: बार बोले। अथवा तो एक संत कहते हैं, राम का नाम छहो शास्त्र का सार है, इसलिए छ: बार। छठ्ठी बार 'राम' शब्द के साथ चेतना ने प्रयाण कर लिया है। वशिष्ठजी पधारे। राजा के शरीर को तैलनाव में रखा है, क्योंकि अग्निसंस्कार के लिए कोई पुत्र हाज़िर नहीं है। भरत को बुलाने के लिए दूत भेजें। दूत आये, भरत से बात कही। भरतजी आए, कैकेयी से मिलते हैं। और सब बात जब खुली है उस समय भरत का आक्रंद, भरत का रोष! मंथरा सजधज के खड़ी है!

युवान भाई-बहन, सत्संग ना हो तो कोई चिंता नहीं, बाकी तुलसी ने कहा, नीच का संग नहीं करना। सावधान। भरत बहुत रोये। पितृक्रिया सरजूतट पर हुई।

अयोध्या की राज्यसभा मिली। राज्य का क्या निर्णय करे? बहुत चर्चा हुई। आखिर में भरतजी की बात मानी गई कि पहले हम चित्रकूट जाए। फिर मेरा ठाकुर जो कहे सो करे। बाकी मैं सत्ता का आदमी नहीं हूं, मैं सत् का आदमी हूं। मैं पद का आदमी नहीं, मैं किसी की पादुका का आदमी हूं। मैं राजगादी पर नहीं बैठ सकता।

पूरी अयोध्या चित्रकूट आती है। जनकराय भी चित्रकूट आते हैं। महाराज का शोक व्यक्त होता है। आखिर में निर्णय हुआ। भरत चौदह साल अवध में रहे, राम बन में रहे। दोनों पितृआज्ञा को पाले। चौदह साल के बाद दोनों को जो निर्णय लेना है वो ले। बिदा बेला है और राम-लखन-जानकी अवध और जनक के समाज को बिदा देते हैं। भरतजी खड़े हैं। नेत्र में आंसू है। भरत को कुछ चाहिए। मांग नहीं पाये। मुझे कुछ आधार चाहिए जिससे मैं जी सकुं हरि।

प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही ।

पादुका शिरोधार्य की है। अवध लौटे। पादुका को राज्यसिंघासन पर स्थापित किया। एक दिन भरत भगवान वशिष्ठजी के पास गए। प्रणाम किया, 'मेरी इच्छा है, प्रभु आप आज्ञा दे तो मैं अयोध्या का संचालन तो करूंगा, लेकिन उदासीन व्रत धारण करूं, कुटिया बनाके रहूं।' वशिष्ठजी ने कहा, 'भरत, हमने धर्म की व्याख्या की है, लेकिन तुम जो सोचते हो, जो कहते हो और जो करते हो वो धर्म नहीं है, धर्म का सार है। जाओ, लेकिन माँ कौशल्या की आज्ञा लेना। ये जी रही है केवल तेरे लिए।' भरतजी माँ कौशल्या के पास आये। बोल नहीं पाये कि मैं भेख पहनुं? 'तुम्हें कुछ कहना है भरत?' 'हा, माँ, माँ मेरा जन्म तुझे दुःख देने के लिए हुआ है! मेरा जन्म न हुआ होता तो राम को वनवास होता। न मेरे पिता का स्वर्गवास होता। न तुम्हें वैधव्य होता। माँ, तू कहे तो मैं नंदिग्राम जाउं?' रामजननी पर क्या गुजरी ये तो कौशल्याजी ही जाने! लेकिन विवेक है। बोली, 'तू यदि नंदिग्राम में वल्कल पहनकर प्रसन्न रह सकता है तो जाओ बाप!' उस समय एक व्यक्ति जो बिलकुल 'मानस' में मौन है ये शत्रुघ्न रो रहा था। तब वहां जाकर शत्रुघ्न का हाथ पकड़कर कहती है, बेटे, शांत हो।

मेरे युवान भाई-बहन, अनुष्ठान करना आसान है। यज्ञ करना आसान है। कथा कहना आसान है। कथा सुनना भी आसान है। तप करना आसान है। यद्यपि आसान नहीं है, लेकिन तुलना में आसान है, लेकिन प्रेम करना कठिन है। मैं रामकथा को प्रेमयज्ञ कहता हूं। व्यासपीठ का योग प्रेमयोग है। एक-दूसरे का आधार और कोई ना हो तो हरिनाम। माँ कौशल्या के कंधों पर सिर रखकर शत्रुघ्न ने इतना कहा, 'माँ, मेरे पिताजी स्वर्ग में, राम-लक्ष्मण-जानकी तीनों वन में, भरत भैया नंदिग्राम जा रहे हैं, मुझे बताओ, मैं कहां जाउं? मेरे लिए क्या आदेश?' माँ ने कहा, 'शत्रुघ्न, तुम सूर्यकुल के संतान हो और उसको तो तपना ही पड़ता है।' भरत की जीवनी देखकर बड़े-बड़े लोग भी शरमिंदे होने लगे! तुलसी लिखते हैं, भरत का जनम ना होता तो मेरे जैसे शठों को इस काल में रामसन्मुख कौन करता?

'अयोध्याकांड' पूरा होता है। 'अरण्यकांड' में प्रभु चित्रकूट से स्थळांतर करते हैं। अत्रि ऋषि के आश्रम में आये। अत्रि ने भगवान राम की स्तुति की।

नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं।।
भजामि ते पदांबुजं। अकामिनां स्वधामदं।।

अनसूया माँ-जानकी मिलते हैं। पतिव्रता धर्म की चर्चा करते हैं। वहीं से प्रभु ने यात्रा आगे की। सुतीष्ण आदि को मिलते कुंभज के आश्रम में आए। उसके बाद गीधराज जटायु से मैत्री करते हुए, पंचवटी में गोदावरी तट पर निवास करने लगे। एक दिन लक्ष्मणजी ने प्रभु को पांच प्रश्न पूछे। भगवान राम ने पांच तात्त्विक प्रश्नों के उत्तर दिए, जिसको 'मानस' के महात्मागण 'रामगीता' कहते हैं। उसके बाद शूर्पणखा आई है। दंडित की गई। खर-दूषण को उकसाया। आते हैं। वीरगति को प्राप्त करते हैं। रावण को उकसाया और रावण सीता अपहरण

की योजना बनाता है। और यहां प्रभु ने ललित नरलीला का संकल्प किया। रावण मारीच को लेकर जानकी का अपहरण करता है। जटायु शहादत लेता है। जानकी को लेकर रावण लंका की अशोकवाटिका में उसको सुरक्षित रखता है। यहां सीता को खोजते हुए राम निकले हैं। जटायु की दिव्यगति। उसके बाद कबंध का निर्वाण। शबरी के आश्रम में हरि का आना। नव प्रकार की भक्ति का गाना। शबरी प्रभु में लीन हुई। प्रभु पंपासरोवर आये। नारद से भेंट हुई। 'अरण्यकांड' पूरा हुआ।

'किष्किन्धाकांड' में हनुमानजी के माध्यम से राम-सुग्रीव की मैत्री हुई। वालि का निर्वाण हुआ। सुग्रीव को राज्य। अंगद को युवराज पद। प्रभु ने चातुर्मास किया। उसके बाद सीताशोध का अभियान चला। सभी दिशा में बंदर-भालू भेजे गए। और हनुमानजीवाला ग्रूप दक्षिण में गया। प्रभु हनुमानजी को मुद्रिका देते हैं। खोजते-खोजते समुद्र के तट पर। स्वयंप्रभा ने मार्गदर्शन किया। 'किष्किन्धाकांड' पूरा होता है। 'सुन्दरकांड' का आरंभ -

जामवंत के बचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए।।
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई।
सहि दुख कंद मूल फल खाई।।

श्री हनुमानजी महाराज लंका के लिए उड़ान भरते हैं। बीच के विघ्नों को पार करते हनुमानजी लंका में प्रवेश करते हैं। विभीषण से भेंट हुई। जानकी को मिलने की युक्ति विभीषण ने बताई और माँ जानकी तक पहुंच जाते हैं। बीच में रावण की बात आई। श्री हनुमानजी मुद्रिका फेंकते हैं। हनुमानजी प्रकट हुए, अपना परिचय दिया। माँ और हनुमानजी की भेंट हुई। आशीर्वाद प्राप्त किए। मधुर फल खाये। कुछ वृक्ष तोड़े। अक्षय का नाश। इन्द्रजित हनुमानजी को बांधकर रावण की सभा में पेश करता है। आखिर में हनुमानजी को जलाने की चेष्टा असफल। उलट-पुलट लंका जल गई। हनुमानजी सागर में स्नान करके माँ के पास आए। माँ ने चूडामणि दिया। माँ का संदेश लेकर लौट आए सब राम की शरण में। समुद्र के तट पर प्रभु की सेना ने डेरा डाला। यहां रावण ने विभीषण का त्याग किया। विभीषण प्रभु की शरण में आया। भगवान ने शरणागत को अपनी शरण में रखा। तीन दिन समुद्र के पास अनशनव्रत धारण किया। समुंदर ने जवाब नहीं दिया। प्रभु ने थोड़ा डर दिखाया। समुद्र शरण आया। सेतुबंध का निर्णय हुआ। और 'सुन्दरकांड' समाप्त।

'लंकाकांड' के आरंभ में सेतुबंध तैयार हुआ। प्रभु की इच्छानुसार भगवान शिव की स्थापना की। उसके बाद प्रभु सुबेल पर डेरा डालते हैं। अंगद संधि का प्रस्ताव लेकर गया। संधि सफल ना हुई। युद्ध अनिवार्य। घमासाण युद्ध होता है। एक के बाद एक वीर निर्वाण को प्राप्त करते हैं। रावण की भुजा और मस्तक तीस बाण से काटे गए। आखिर में ईकत्तीसवां बाण नाभि में मारा। जीवन में पहली बार और एक आखरी बार 'राम' उच्चारण करते रावण गिरा। रावण का तेज प्रभु के चेहरे में समा गया। मंदोदरी आई। प्रभु की स्तुति की। रावण की क्रिया हुई। विभीषण को राजतिलक हुआ। जानकीजी को खबर दी। सीता-राम का मिलन हुआ। पुष्पक तैयार हुआ। खास-खास मित्रों को लिए प्रभु अयोध्या की ओर यात्रा का आरंभ करते हैं। जानकी को आकाशमार्ग से सेतुबंध का दर्शन। कुंभज आदि नायकों को मिलते हुए भगवान हनुमानजी को अयोध्या संदेश देने भेजते हैं। पुष्पक शृंगबेरपुर ऊतरा। गुहराज निषाद का पूरा समाज दौड़ आया! प्रभु ने केवट को कहा, बोल तेरी उतराई क्या दूं? तब कहा, महाराज, ये तो दूसरी बार दर्शन करने की होशियारी थी! यदि देना चाहते हो, तो मैंने आपको नौका में बिठाया था, आप मुझे विमान में बिठाकर अयोध्या ले चलो! गुहराज को बिठाते हैं।

'उत्तरकांड' के आरंभ में भरत की विरहगति का वर्णन। खबर मिली, प्रभु आ रहे हैं। पूरी अयोध्या में आनंद-आनंद! विमान अयोध्या की पुण्यभूमि पर उतरता

है। प्रभु ने अपनी जन्मभूमि को प्रणाम किया। सरजू को प्रणाम किया। शस्त्र फेंककर भगवान राम ने वशिष्ठजी के चरणों में दंडवत् किया। भरत-राम मिले।

अमित रूप प्रगटे तेहि काला।
जथा जोग मिले सबहि कृपाला।।

प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत साक्षात्कार हुआ। कैकेयी के भवन में प्रभु पहले गए। माँ का संकोच निवारण किया। माँ कौशल्या और सुमित्रा के चरण पकड़ें। जानकी सास के चरणों में प्रणाम करती है। वशिष्ठजी ने कहा, आज ही राजतिलक कर दे, कल का भरोसा न करे। चौदह साल पहले जो वस्त्रालंकार पहनना था वो चौदह साल के बाद पहनाया गया। दिव्य सिंहासन आया। और पृथ्वी को प्रणाम करके, सूर्य भगवान को प्रणाम करके, दिशाओं को प्रणाम करके, जनता को प्रणाम करके, माताओं को प्रणाम करके, गुरु को प्रणाम करके, अपने पूर्वजों को प्रणाम करके, अपनी प्रिय प्रजा को प्रणाम करके राम गादी पर बैठे। देवताओं ने पुष्पवृष्टि की। वशिष्ठजी ने राजतिलक किया -

प्रथम तिलक बसिष्ट मुनि कीन्हा।
पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा।।

त्रिभुवन में रामराज्य का-प्रेमराज्य का जयघोष होता है। चार वेद पधारे। भगवान शंकर पधारे। छः मास बीत गए। हनुमानजी को छोड़कर सबको बिदा दी। रामराज्य का अद्‌भुत वर्णन गोस्वामीजी ने किया है। समयमर्यादा पूरी होते जानकीजी ने दो पुत्रों को जनम दिया, लव-कुश। उसी तरह तीनों और भाईयों के घर भी दो-दो पुत्र हुए। रघुवंश के वारिस का नाम देकर तुलसीदासजी ने यहां रघुकुल की कथा पूरी की। अपवादवाली कथा तुलसी ने लिखी नहीं, क्योंकि तुलसी संवाद चाहते हैं।

उसके बाद 'उत्तरकांड' में बाबा भुशुंडि का चरित्र। उसका दर्शन। और गरुड आखिर में सात प्रश्न पूछते हैं और कागभुशुंडिजी उसके उत्तर देते हैं। गरुड के सामने कागभुशुंडि ने कथा पूरी कर दी। भगवान शिव ने पार्वती के सामने कथा पूरी कर दी। याज्ञवल्क्यजी ने भरद्वाजजी के सामने कथा को विराम दिया कि नहीं ख़बर नहीं। और गोस्वामीजी अपने मन को संबोधित करते हुए रामकथा को विराम देते हैं। इन चारों की छाया में बैठकर ये गंगा के तट पर इस पावन स्थान में नव दिवसीय ये रामकथा को मैं भी विराम देने के लिए अग्रसर हूं। तुलसी बरवै 'रामायण' में कहते हैं, स्वारथ और परमारथ के लिए एक उपाय है-

स्वारथ परमारथ हित एक उपाय ।
सीय राम पद तुलसी प्रेम बढाय ।।

दूसरों के लिए भगवतचरण में प्रेम करते जो परमार्थी बनते हैं ऐसे संत धन्य है। ये नवदिवसीय रामकथा 'मानस-परमारथ' वैश्विक योगदिन के अवसर पर मैं महादेव को अर्पण करता हूं।

हिन्दुस्तान का आदमी अभय होना चाहिए। हम गंगा के तट पर बैठे हैं। मुझे समझ में नहीं आता, कब तक हम प्रपंच और नकाब में रहे! मैंने कल दिल्ही में भी कहा कि आधि हो, व्याधि हो, उपाधि हो, योग मिटा देती है और समाधि उपलब्ध करा देती है। समाधि का अर्थ है समाधान। आदमी को पूर्णत: अंदर से जवाब मिल जाय, एक डकार आ जाय, एक तसल्ली आ जाय। किसी बुद्धपुरुष के पास कभी पांच मिनट सन्नाटे के साथ बैठो। जाओगे तब लगेगा, मानो मैंने नहा लिया! योग क्या करता है? दिल शुद्ध करता है, देह शुद्ध करता है और आदमी का दिमाग भी शुद्ध करता है।

मानस-मुशायरा

देना है तो मेरी निगाह को ऐसी रसाई दे।
मैं देखूं आयना और मुझको तू दिखाई दे।
मुज़रीम है सोच-सोच गुनहगार है सांस-सांस।
यहां सफ़ाई दे तो भी कितनी सफ़ाई दे।

– किसनबिहारी 'नूर'

शायरी तो फ़कत बहाना है।
अस्ल मक़सद तुझे रिझाना है।

– दीक्षित दनकौरी

जब तक उनके पास रहा।
मैं हूं ये अहसास रहा।
सब कुछ खोकर भी मुझको,
पाने का आभास रहा।

– विज्ञानव्रत

जिस दीये में हो तेल खैरात का,
उस दीये को जलाना नहीं चाहिए।

– शहूद आलम आफ़ाकी

कभी तूफ़ां कभी कश्ति कभी मज़धार से यारी।
किसी दिन लेके डूबेगी तेरी ये सभी होंशियारी।

– मासूम गाज़ियाबादी

महोब्बत का कानों में रस घोलते हैं।
ये ऊर्दू जूबां है, जो हम बोलते हैं।

– शरफ़ नानपारवी

कवचिदन्यतोऽपि

कोई भी संवाद बिना सद्भाव शुरू नहीं हो सकता और बिना साधुभाव पूर्ण नहीं हो सकता

'गीताजयंती' के पावन प्रसंग पर मोरारिबापू का प्रेरणादायी प्रवचन

बाप, 'गीताजयंती' के परम पावन अवसर पर भगवान योगेश्वर कृष्ण के चरणारविंद में प्रणाम करके त्रिभुवनीय सद्ग्रंथ 'भगवद्गीता' को प्रणाम करके 'गीता विद्यालय' की इस उपजाऊ भूमि में विरागपूर्वक जिन्होंने बीज बोये और फलस्वरूप यहां 'गीता' का स्वाध्याय होता रहा। कितने ही क्षेत्र में ये फले-फूलें वो 'गीता विद्यालय' के सभी बच्चें, युवा, गुरुजन, सब को मेरा प्रणाम। अभी पूज्य शास्त्रीबापा ने बाबुलालभाई का स्मरण किया। मैं भी अपनी संवेदना और श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं। विरागमुनि को प्रणाम करता हूं। उनकी दैहिक बिदा के बाद 'गीता विद्यालय' को निरंतर वात्सल्य देते रहते पूज्य भोलेदासजी बापू, पूज्य शास्त्रीबापा, पूज्य लाभुदादा, दोनों विनुभाई, ग्रामजन, कथा जगत के मेरे सभी पूजनीय कथागायक भाईओं-बहनों, उपस्थित संत-महंत गण और आप सब।

कल रास्ते में बात चल रही थी कि यह 'गीताजयंती' महोत्सव कौन से क्रमांक का है? पता नहीं था पर यहां आकर पता चला कि इकतालीसवां है। मैंने पूछा, ऐसा हुआ है कि मैं एक बार भी न आया हूं? विनुभाई ने कहा, नहीं। मैं दो घण्टे के लिए भी आया हूं।

मेरा मन का संकोच या मीठी पीड़ा कहूं कि इस अवसर पर दो-तीन दिन नहीं आ सका हूं। इसका मुझे दु:ख है। मुझे दो दिन भी आना चाहिए। ऐसा भी नहीं कि मैं बहुत व्यस्त हूं। ऐसा भी नहीं कि मुझे यहां आना पसंद नहीं। अपने यहां समाधान हेतु 'नियति' शब्द अच्छा है। नियति का कोइ निधि होगा। मैं इकतालीस साल से यहां आ रहा हूं। त्रिवेणी में भी जाने की चुक हुई होगी, पता नहीं! मेरे नसीब में चुकने का है ही नहीं। यह जीवन भी चुक न जाऊं, ऐसी शुभकामना देते रहियेगा। क्योंकि-

फेरो रे फळे तो आ फेरो कामनो,
नहीं तो फेरे रे फेरे झाझो फेर
एक रे फेरामां मीरांबाई उजळां...

यहां मैं आ सका हूं, अच्छा लगता है। पर मेरी व्यस्तता या योग कहे फ़िर भी न आने की एक मीठी पीड़ा होती है और आ सकूं तो इसका आनंद भी होता है। मुझे सत्तर हुए। आंख-चर्मचक्षु कमज़ोर होंगे पर भीतर से देख सकता हूं। विद्यालय का थोड़ा तेज बढ़ गया है। यह मैं बोल रहा हूं तो जिम्मेवारी ग्रामजनों और लड़कों की है। हमारे अग्रपुरुष, पूजनीय बापा, देश-विदेश के व्यस्त कार्यक्रम में से समय मिले, कभी आठ दिन, पांच दिन यहां आकर बैठते हैं। लाभुदादा तो निरंतर पास में ही है। उनसे मार्गदर्शन मिलता है। 'गीता' के श्लोक चाहे उतनी मात्रा में, संख्या में बोले जाते हो, निरंतर तेजवृद्धि न हो तो 'गीता' को हम ठीक तरह से समझ नहीं पाए हैं। आज मैं यहां आया, लाइट्स ज्यादा हुई इसका अर्थ यह नहीं कि तेज बढ़ा। चीमनी जितनी साफ रहेगी इतना प्रकाश बढ़ेगा। हम सब यही करे। इस संस्था ने गांव से कुछ मांगा नहीं है। विरागमुनि ने भी नहीं। इस गांव के और आसपास के गांवों से बच्चें यहां आए, बस यही मांगा है। वह भी 'भगवद्गीता', 'मानस' का स्वाध्याय हो इसीलिए। जीवन में तृप्ति का अनुभव हो, ऐसा एक मात्र उद्देश्य लेकर चलती 'गीता विद्यालय' की संस्था उत्तरोत्तर विकसित हो, ऐसी योगेश्वर के चरणों में मेरी प्रार्थना है।

'गीता' पर बहुत प्रवचन हुए। भाष्य हुए। बहुत लिखा गया। दुनियाभर की भाषाओं में भाषांतर हुए हैं। समश्लोकी भी हुआ है। बहुत सारी भाषाओं में 'गीता' पर काफ़ी विचार हुए हैं। मनन भी हुआ। चिंतन भी हुआ। दर्शन कर सके ऐसे महानुभावों ने दर्शन भी दिया। 'गीता'गायन भी हुआ अलग-अलग रागों में। मंचन भी हुआ। नृत्य-नाटिकाएं भी हुई। 'गीता' ने सभी विद्याओं का स्पर्श किया है। संदेश भी प्रवाहित हुए। उपदेश भी दिए गए। अधिकृत व्यक्तिओं ने 'गीता' द्वारा आदेश भी दिए। 'गीता' सार्वभौम है। इकतालीस वर्षों से मुझे कहा जाता है कि मैं यहां आकर 'गीता' का संदेश दूं। ऐसा शीर्षक निश्चित किया जाता है। 'गीता' पर काफ़ी सोच-विचार हुआ है। विचार होता रहेगा। ऐसा यह सद्ग्रंथ है। इस बार क्या संदेश दूं? -

इस राज़ को क्या जाने साहिल के तमाशाई।
हम डूब के जाने हैं, सागर तेरी गहराई।।

शायर कहता है, किनारे पर खड़े रहनेवाले राज़ क्या जाने? हम तो गौता लगाए तभी सागर की गहराई जान सकते हैं। कितने ही महापुरुष ने 'गीता' में गोता लगाकर हमें संदेश-उपदेश दिए हैं। हम क्या जोड़े? हम तो छप्पकछई करनेवाले हैं। बच्चे थे तब छप्पकछई पसंद करते थे। यह तो उम्र से बड़े हुए। बाकी तो कोई बड़ा नहीं हुआ है। अत: अब छप्पकछई बचकाना लगता है। बाकी अच्छी वस्तु के किनारे से दर्शन भी अच्छा लगता है।

मुझे क्या कहना है? यहां बड़ी मुश्किल नहीं, आनंद है। शास्त्रीबापा ने अच्छी बात कही। 'करिष्ये वचनं तव।' अठारहवें अध्याय में छ:-छ: अध्याय में कर्म, ज्ञान, भक्ति की जो बातें हुई वह मात्र 'करिष्ये वचनं तव।' मैं प्रसन्न हुआ। बापा, क्या संदेश दूं? बापा ने छोड़ा वहीं से आगे बढ़ू। बहुत सुंदर भूमिका बांधी। ऐसा पहलीबार सुना। कुबूल करता हूं। नया विचार को खुशी से अपना लूं। हमारे लिए प्रसाद है। 'करिष्ये वचनं तव।' 'गीता'का एक एजन्डा है साहब! गुणवंत शाह ने

कहा है। उनके विरचित 'महाभारत' के भाष्य की प्रथम प्रत मुझे भेजी। मैं प्रस्तावना और थोड़ा और देख रहा था, 'मानव स्वभाव का महाकाव्य 'महाभारत।'' उन्होंने कहा, 'गीता'का एक ही एजन्डा है, धर्म की ग्लानि दूर करनी है। दुर्वृत्ति, दुर्जनता का विनाश करना है। साधुओं का परित्राण करना, धर्म को मूल रूप में स्थापित करना। 'गीता' के इस एजन्डा को हम सब जानते हैं। 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।' यह हम सब जानते हैं। धर्म केन्द्र में है। मैं भी स्वीकार करता हूं। मुझे इस एजन्डा में नम्रभाव से पांचवीं वस्तु रखनी है। गुणवंतभाई को मैं आज ही फोन करके कहूंगा कि आपके विचार 'गीताजयंती' के दिन कहे हैं मेरी खुशी के लिए। पर धर्म की ग्लानि को दूर करनी चाहिए। दुवृत्ति का नाश करना चाहिए। साधु का परित्राण हो। धर्म की स्थापना हो। इस मूल एजन्डा में पांचवीं वस्तु है बुद्धत्व को प्राप्त होना। 'नष्टोमोहः', क्या यह बुद्धत्व नहीं है? क्या यह बुद्धत्व की व्याख्या नहीं है? जब कोई आदमी बेफिक्र हो, फकीरी से कह दे कि मेरा मोह नष्ट हो गया है, केवल कहने की खातिर नहीं कि मुझे ध्यान लग गया है और मैं पतंजलि की सातवीं पायदान चढ़ चुका हूं। ये बातें जिनकी जो भी हो। पर आदमी ऐसा साफ कह सके कि मेरा मोह गया है -

गयउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित ।
भयउ राम पद नेह तव प्रसाद बायस तिलक ।।

बुद्धत्व का पहला लक्षण मोहत्याग है। वह मोरारिबापू का पांचवां अभिप्राय है। प्लीज़, केवल मेरे लिए। यह कोई उपदेश नहीं। मेरी हेसियत भी नहीं। मैं ऐसा विचार करूं कि 'गीता' का आखिरी एजन्डा यही है कि अर्जुन बुद्धत्व को प्राप्त करे।

गुरुकृपा से तात्त्विक दृष्टि से देखा जाय तो 'महाभारत' और 'रामायण' दोनों में युद्ध से बुद्ध होने की प्रक्रिया है। दोनों का परमलक्ष्य बुद्धत्व है। युद्ध की कथा रमणीय होती है ऐसा वाङ्मय में कहा गया है। क्या युद्ध की कथा रमणीय हो सकती है? या तो कहनेवाले झूठे हैं या मोरारिबापू गलत है। या समझनेवाले झूठे हैं। मैं दूसरों को क्यों गलत साबित कर सकूं? क्या युद्ध की कथा रमणीय हो सकती है? पर ऐसा कहा गया है। यह इसलिए सच है कि रमणीय हो वही स्मरणीय है। कोई भी संघर्ष आपको बुद्धत्व तक पहुंचा दे। किसी भी संघर्ष में से कोई शरणागति का मार्ग बता दे। इसीलिए मुझे पांचवां एजन्डा लगा है। यह चार तो है ही। 'गीता' संवाद है। कृष्ण-अर्जुन संवाद है। संवाद का आरंभ सद्भाव से होता है। मेरे भाईयों और बहनों, कोई भी संवाद बिना सद्भाव शुरू नहीं हो सकता और बिना साधुभाव पूर्ण नहीं हो सकता। हमारे सद्भाव के कारण ही संवाद कर सकते हैं। हम विवादी उपद्रव करते हैं, क्योंकि हम में परस्पर सद्भाव नहीं है।

अभी मैंने अहमदाबाद की कथा में कहा कि कृष्ण की गायें मरकही नहीं थी पर आदमी मरकहा निकला! उनकी गायें सयानी थी। किसी को भी सींग नहीं मारती थी। पर पांच हजार वर्ष पहले यह ग्वाला हमें मारता गया जिसे चोट की पीड़ा अभी भी हो रही है! अभी भी उनका नाम ले तो आंखें नम होती है। हमारे स्मरण में द्वारिकाधीश आने लगे। मानसिक रूप से ब्रज में फेरा लगाने की इच्छा हो आए। मेरा थारो भगत तो यों कहें 'श्याम विना ब्रज सूनुं लागे।' हमारा अतिप्रिय स्वजन अलबिदा हो तब या तो श्वेतवस्त्र या कालेवस्त्र पहनते हैं। इस साधु ने श्वेत-काले वस्त्र कृष्ण के स्मरण में पहने हैं। यह ब्लेक-व्हाइट का मेचिंग नहीं है। एक जगह मैं नरसिंह महेता एवोर्ड देने गया। सभी कुर्सियां वैसे ही थी। मेरी कुर्सी पर सफेद वस्त्र बिछे थे। मेरी सामने भी मेज का रंग काला था। मैंने कहा यह ब्लेक एन्ड व्हाईट बहुत मेचिंग होता है! मेरी सावित्री माँ आखिर में सफेद साडी पहनती थी। मेरी दादी अमृत माँ ने हंमेशा काली साडी पहनी है। मेरी चौबीस घंटे की यही स्मृति है। मुझे भी पता नहीं था ऐसे रहस्य है। ऐसे जब खुलते हैं तब

पता चलता है कि 'श्याम विना ब्रज सूनुं लागे।' 'सूना' का भाषांतर नहीं हो सकता। जिसने सन्नाटे सहे हैं उसे ही पता चले। सूना का क्या भाषांतर?

सूना माने एकान्त, तन्हाई। साहब, ऐसे शब्द है। सूना एक अनुभूति है, अनुभव नहीं। अनुभव कह सकते हैं, अनुभूति नहीं। तुलसी कहते हैं, 'निज अनुभव अब कहउ खगेसा।' भुशुंडि ने अनुभव कहा तब वे बोले थे। शब्द लेने पड़े कि अनुभव ले सके, 'उमा कहउ मैं अनुभव अपना।' पर अनुभूति कही नहीं जाती। 'माधव क्यांय नथी मधुवनमां।' वह आदमी मरकहा है! उन्होंने अपने त्रिभुवन विमोहित से मारा। अपने कृपा कटाक्ष से मारा। उन्होंने 'गीता' के श्लोक से मंत्रमुग्ध कर दिया। काफी मार्मिक चोटें पहुंचाई। काल भी हमें मारने नहीं देता। कृष्ण ने हममें अमरत्व उगाया। यह पूरी प्रक्रिया बुद्धत्व की है। युद्ध की कथा मोरारिबापू को इसलिए रमणीय लगती है यदि वह बुद्धत्व दे। 'नष्टोमोहः' बुद्धत्व का पहला लक्षण है। कैसे कहे? बहुत कठिन है। उन्होंने हंमेशा फकीरीपूर्वक का निर्भय उद्गार निकाला है। यह बुद्धत्व का प्रथम लक्षण है।

बुद्धत्व का दूसरा लक्षण है 'स्मृतिर्लब्धा।' हम जो कहे वो याद आए। स्मृति में आता है। शायद सात सौ श्लोक भी याद आए। शायद किसी के सात वर्ष में भी आए। माँ के गर्भ में सातवें महीने में भी आ जाए संभव है। पर वो प्रयास से नहीं, प्रसाद से ही याद आ जाय। अतः मैं कथाओं में कहता हूं, मेरे राम ने जितने काम 'रामायण' में किए वहां तुलसी लिखते हैं, 'बिनु प्रयास।' कोई प्रयत्न नहीं, प्रासादिक से उतरा है। हमें भीतरी चमक हो और पुरानी स्मृति उमड आए तब नहीं लिखते कि स्मृति मिल आई। अर्जुन को कौन-सी स्मृति आई कि कृष्ण मेरा रिश्तेदार है। यह स्मृति आई कि योगेश्वर है, विश्वरूप दर्शन अभी थोड़े समय पूर्व देखा है। इसे कौन-सी स्मृति आई, यह रहस्य है। यह रहस्य तभी समझ में आए जब गुरुकृपा हो। 'प्रसाद' मिला। यह शब्द याद रखियेगा बाप! 'रामायण' में दो शब्द है, 'प्रभु प्रसाद' और 'गुरु प्रसाद।'

बुद्धत्व का दूसरा लक्षण स्मृति आना है। दादू चर्मकार्य करते हैं। इतने में कबीरपुत्र कमाल का आगमन होता है। पर दादू अपने कार्य में डूबे हैं अतः कमाल को हुआ कि विक्षेप नहीं होना चाहिए। अतः वहीं खड़े हो जाते हैं। इस बुद्धपुरुष की क्रिया देखते हैं। इतने में ध्यान गया, 'अरे! कबीरसाहब के पुत्र! पधारिए। मैं बहुत व्यस्त हूं। घर भी ज्यों-त्यों पड़ा है। एक चमडे का टुकड़ा पड़ा है। आप बिराजिए। मेरे पास और कुछ नहीं है।' कमाल ने कहा, आप जैसा बुद्धपुरुष मेरी ओर देखे, स्वागत करे, बिनती करे, बैठने के लिए आसन दे। फिर कौन-सा आसन है यह देखा नहीं जाता। इसमें से एक स्मृति आती है। मुझे प्रसाद प्राप्त हुआ। स्मृति आती है कि इसी तरह मेरे पास साहब आकर खड़ा रहे। पर मैं अपने काम में इतना डूबा हूं कि साहब को तो ऐसे आसन पर न बिठाया जाय। पर उस समय मैं समझा नहीं कि जो भी हो बिछा देना चाहिए। हररोज दो-दो घडी साहब मेरे पास मेरे अंदर ही था। वहीं से बाहर आता है। क्योंकि मैं भीतर से नहीं देखता था। अतः वह बाहर होता था। वह स्मृति साहब आपके दो घडी के सत्संग से प्राप्त हुई। स्मृति का आना बुद्धपुरुष का दूसरा लक्षण है। 'स्मृतिर्लब्धा।' इसके साथ यह भी होश होना चाहिए कि इस स्मृति से मुझे कोई जनमजनम का रहस्य समझ में आया है। यह स्मृति किसी की कृपा का परिणाम है। यह बुद्धत्व का तीसरा लक्षण है। मेरी साधना का फल नहीं है। मेरा तुलसी स्पष्ट ना कहता है।

यह गुन साधन तें नहिं होई।

यह साधन से नहीं होता साहब! साधन को अपनी उम्र होती है। कभी जीर्णशीर्ण हो जायगी। कभी देशकालानुसार अनुपयोगी हो जायगी। सतजुग का साधन ध्यान था। वह साधन हमारे लिए सबकुछ कर सकता था। अभी हमारे लिए साधन नाम है। यह कभी पुराना नहीं होगा।

'चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ।' मेरा तुलसी कहे, चारों वेद में, चारों युग में नाम की महिमा प्रतिष्ठित है। वह साधन कभी पुराना नहीं होता साहब! जितना गहो उतना रुद्राक्ष की माला ज्यादा तेजस्वी हो। चाहे आप वैसे ही फेरा करे। दुनिया चाहे कुछ भी माने, आपके हाथ में माला आयेगी तो ईश्वर को पता चलेगा कि यह रूपया तो नहीं गिनता! भले नाम नहीं जपता पर एक क्षण के लिए स्मृति आ जाय कि माला उसके लिए हैं। काम हो गया। हमें यह याद रहे, यह बुद्धत्व का तीसरा लक्षण है कि किसी की कृपा है।

'स्थितोऽस्मि'; अब मैं बैठ गया हूं। अब मैं शांत हूं। अब मैं 'शिवोऽहम्' हूं। अर्जुन यों दो बार बैठ जाता है। एक तो शरीर कांपने लगा। विषादयोग शुरू हुआ। अर्जुन रथ में बैठ गया। बराबर है? मुझे ऐसा लग रहा है। कभी मैंने कथा में भी कहा है। विश्वरूप दर्शन करने पर स्तब्ध हो गया। बैठ गया है। वह दिखाई नहीं देता। खड़े-खड़े कहा, अब बस, सब कुछ ले लो। अब बस हो गया। यह अद्‌भुत रूप है। शायद बैठ गया हो। पता नहीं है। आखिर में लौटता है। 'स्थितोऽस्मि', अब मैं बैठ जाता हूं। भले शरीर से न बैठा हो पर भीतर से आलथी-पालथी मार दी है। साहब, यह बुद्धत्व का लक्षण है। कितने सारे क्रियाकांड, कर्मयोग, सोच-विचार, कितने प्रयोग आदमी करता है! इन सब में से प्रत्याहार करने लगे, धीरे-धीरे बैठने लगे कि 'अब हौं नाच्यो बहुत गोपाल।' उसे पता चल जाय कि ये जितने फैले उतने फंसे! मैं कल ही कथा में कहता था, ज्यादा वर्तुल नहीं करना चाहिए। नहीं तो केन्द्र से भटक जायेंगे। केन्द्रबिंदु से अधिक वर्तुल बनायेंगे तो भागना पड़ेगा। इनका विस्तार वाह! कितने आश्रित! इनके अनुयायी! शिष्य! आश्रम के मकान! कितकितने प्रयोग! कहीं नेत्रयज्ञ तो कहीं दंतयज्ञ! कितनी सारी प्रवृत्तियां! भले छोटा-सा ग्रूप हो। पर केन्द्र के नजदीक तो रहे। यही मूल मुद्दा है, केन्द्र है। उससे हटना नहीं चाहिए। कथाकार जगत को भी कहूं कि आपके मंडप नए-नए डालने पड़े इतनी भीड़ भी हो तो भी केन्द्र चूक न जाय इसका ध्यान रखना चाहिए। क्योंकि हमारे पास जो पोथी है व्यास की, ऐसी विशालता दुनिया में कोई नहीं है। साहब, वह बिन्दु केन्द्र बिन्दु से पकड़ा जाना चाहिए। माने भीतर से बैठने की शांत होने की बात बुद्धत्व का लक्षण है। ऐसा कहा जाता है कि बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ तो कितने ही दिनों तक खामोश रहे। बिलकुल शांत, चुप हो गए।

'स्थितोऽस्मि' यह बुद्धत्व का लक्षण है। मानव गुणातीत हो सकता है। यह 'स्थितोऽस्मि' शब्द तभी सार्थक हो। 'गत संदेहः', अब सारे वहम, भ्रम, संशय गए। मुझे यह पूछना है, जानना है, मुझे यह वहम है। हम सब तो वहम विग्रह है। हमारे शरीर में वहम के अलावा कुछ भी नहीं है। पर जिनके संदेह मिट गए और बुद्धत्व का उच्च लक्षण 'करिष्ये वचनं तव।' तुम जैसा कहोगे वैसा ही करूंगा। वह कौन-सा वचन? किस वचन की ओर संकेत है? अठारह-अठारह अध्याय जो इन तीन शब्दो में आज समाविष्ट हुए, कितनी बड़ी बात है? इससे आगे मुझे सोचना हो तो कौन-सा वचन? ऐसे पांच वचन के लिए यदि हम कह सके उस दिन अपना बुद्धत्व धन्य होगा। कीचड़ में कमल खिलेगा। फिर वो रहस्य खुलने लगेंगे कि कीचड में कमल, कमल में भ्रमर पर भ्रमर में क्या है? वो सब बाद में खुले। सूरज के कारण कीचड में कमल खिले वो तो दिखाई दे। पर वो भ्रमर गुंजन करे उसमें कौन-सा तत्त्व है? कितने सूर पर हाथ रखा है? किसने सूर दबाए कि गुंजन शुरू हुआ? हम तो ऐसा ही मानते हैं कि गुंजन अपना है। ये तो सब कबूतर का घू घू घू है। इसमें दूसरा क्या है? यह साधक की अंतरयात्रा फिर शुरू होती। पर यह कौन-सा वचन?

बापा, 'करिष्ये वचनं तव'; मुझे ऐसा समझ में आया है। मैं तो अपने आंतरिक विकास और विश्राम के लिए दौड़धूप करता हूं साहब। दूसरा कोई हेतु नहीं। केवल भीतरी विकास हो। भीतरी खुलापन बढ़े। और वो

हमें विश्राम दे। ज्यादा प्रकाश हो तो हम सो नहीं पाते। प्रकाश चाहिए जो विश्राम भी दे। 'विश्राम' और 'विकास' के ट्रेक पर 'रामायण' लेकर गति करता हूं। आपके आशीर्वाद से मैं अपनी दृष्टि से सोचूं तो पांच वचन हम समझ ले तो जरा भी कठिन नहीं है। सीधी-सरल बातें है। 'जोता रे जोता मळी गयां अमने महासागरनां मोती।' देखते-देखते, खेलते-खेलते, दातून से बिल की धूल को हटाते थे तो वहां से सर्प निकला। उसके पीछे महादेव भी निकले। सर्प को देखकर भागते हैं। भागना चाहिए। मोरारिबापू के कहने से वहां क्यों खड़े रहे?

बाप, पांच वचन। एक वचन, सत्य वचन। उसके साथ प्रिय नहीं जोड़ता। मेरी दृष्टि से सत्य वचन प्रिय ही होता है। सत्य वचन जहां से भी निकले, जिसमें से निकले। मैं सत्यवचन सुनूं तब उस दिन मैं 'करिष्ये वचनं तव'; फिलहाल मेरा योगेश्वर तू है। सत्यवचन का स्वीकार कर लेना चाहिए। मैंने कई बार कहा है, कई आदमी सत्य बोलते होंगे पर दूसरों के सत्य का स्वीकार नहीं करते हैं। अमुक क्षेत्र के तो बिलकुल नहीं! उन्हें सत्य का स्वीकार मुश्किल होता है। कुछेक लोग दूध में से सूक्ष्मजंतु निकालते हैं! इनसे कैसे निपटे? केवल शब्दों का खिलवाड करते हो! अखबार का लेख लिखने दे तो छक्का छुडा दे ऐसा लिखे! ऐसे निचोडे तो एक पानी की बूंद तक न निकले! हम अर्जुन बनकर जब कहेंगे, मैं सत्यवचन कहूंगा, उस दिन बुद्धत्व शिखर पर चढ़ा होगा। सत्यवचन में प्रियवचन भी आ जाता है।

दूसरा, श्रुतिवचन-वेदवचन स्वीकारना चाहिए। वेद समाज का ग्रंथ है। इस अर्थ में मैं नहीं कहता। जगत में जानने योग्य किसी भी वस्तु को आप जान ले तो आप वेदविद् है। वेद संकीर्ण अर्थ में एक ही ग्रंथ का नाम नहीं है। श्रुतिवचन -

बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना ऐन ।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन ।।

एक सत्यवचन, दूसरा वेदवचन। तीसरा कोई भी धर्म हो, कोई भी उपासना पद्धति हो, धर्मवचन; जिस धर्म में से अच्छा वचन मिल जाय वो धर्मवचन मेरी दृष्टि में तीसरा वचन है। चौथा वचन है प्रभुवचन। यह तो श्रीमुख से निकला वचन है। परमात्माजी का वचन; मेरे ठाकोरजी का वचन। यह तो श्रीमुख से निकला वचन है। परमात्माजी का वचन; मेरे ठाकोरजी का वचन। पर सर्वोपरि गुरुवचन है।

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर।।

प्रभु, गुरुजन, शास्त्र, वेद, सत्य और धर्म के ये पांच वचन है। धर्म माने विशेषण मुक्त धर्म! सत्य, प्रेम, करुणा का धर्म। प्रायः सत्य घन होने से कठोर लगता है। प्रेम वनपक है। पूरी तरह से पक जाय ऐसा प्रेम अच्छा नहीं। वनपक रखिए। यह एकदम घन भी नहीं है। बिलकुल द्रवीभूत स्थिति का नाम करुणा है। धर्म माने सत्य, प्रेम, करुणा। सब स्वीकार करते हैं। जो न करे उसे कौन समझाये? 'मैं नहीं मानता' का अर्थ है, भीतर हा है पर अहम् ना कहता है! भीतर कहे, यह सच है पर अहम् मानने नहीं देता!

प्रभु, भगवन् कृष्ण, वेद-गीता और धर्मवचन; जिस धर्म की स्थापना करने के लिए कृष्ण प्रवृत्ति मार्ग में आए। सत्य, प्रेम प्रभुवचन है। गुरुवचन माने 'कृष्णं वंदे जगद्‌गुरुम्', जो बोले वो सत्य है। परम सत्य है। परम प्रेम है कृष्ण। कृष्ण परम करुणा है। संसार में रहकर ये पांच वचन समझ लें। संसार सरस है। पृथ्वी और यह सब सरस है। अभी पृथ्वी पर नासा संशोधनरत है। भोर में साढ़े चार बजे कौन-से वाइब्रेशन कार्य करता है? वैज्ञानिक भी सोच में पड़ गए हैं! प्रातःकाल भारत ने जगत को दिया है। क्यों इस देश का ऋषि कहता है, प्रातःकाल में जगिये। मैंने तो यों ही कहा कि हम जगे वहीं से प्रातःकाल है। यहां तक संशोधन होते हैं।

सूयवर्तुल में से निकलती आवाज़ नासा ने टेप की है। 'ॐ, ॐ, ॐ' सुनाई देता है। शायद समय वो दिन भी दूर नहीं दिखाई देता है जब हम कृष्ण की आवाज़ सुन सकेंगे। हम नहीं होंगे। हमारी पीढ़ी कहेगी कृष्ण और अर्जुन बोले थे उसीके टोन में, बोली में। अभी जिस तरह विज्ञान का विकास हो रहा है तो लगता है यह विज्ञान सबकुछ कर लेगा।

मैं ये पांच वचन मानूंगा। सत्य, प्रभु, गुरु, वेद और धर्मवचन। यह है 'करिष्ये वचनं तव।' धर्मग्लानि हो ऐसी बात है। ऐसा होता है? मेरे मन में यह प्रश्न है। पर धर्म के नाम पर जब अनेक धर्म पोषित होते हैं तब धर्म ही धर्म को ग्लानि देता है। साधु-संतों के परित्राण हेतु, दुरित के नाश के लिए अवतीर्ण होने की बात है। मैं पहले 'नाश' शब्द इस्तेमाल करता था। अब मुझे 'नाश-विनाश' शब्द पसंद नहीं है। मैं हंमेशा कहता हूं कि रावण का नाश प्रभु ने नहीं किया है, उसका निर्वाण किया है। 'नाश' जैसे हिंसक शब्द मेरी डीक्षनेरी से बाहर है। यह सब क्या है? साहब, ऐसी भाषा भूल जाइए। इसीलिए तो चोटीला की कथा में मैंने कहा कि 'या देवी सर्व भूतेषु, अहिंसा रूपेण संस्थिता।' अब एक नई देवी की स्थापना होनी चाहिए। जिसका नाम अहिंसा है। हमें इस स्थिति तक पहुंचना है।

बाप, 'गीता' के ये चार हेतु तो है ही। मेरी व्यक्तिगत निष्ठा का पांचवां हेतु बुद्धत्व है। 'स्थितोऽस्मि गतसन्देहः।' मोह के नष्ट होने पर सब याद आने लगे। सब न हो तो भी हर्ज नहीं। पांच वचन याद रखने हैं। भगतबापू काग की पंक्ति गा लूं -

एने भरोसे रहेवाय जी...

भरोसे रहेवाय, पंडनुं डहापण नो डोळाय...

मैंने यह दृष्टांत कई बार दिया है। निझामुद्दीन ओलिया बैठे हैं। संध्या समय अमीर खुशरो धूप में लोबान डालना भूल गए हैं। सहसा लोबान की खुश्बू आई! नासिका में गई। अमीर को हुआ, मैं चुक गया! मेरे पीर को यह काम करना पड़ा! आंसू के साथ पीर के पैर पकड़ लिए। कहा, मैं चुक गया! आपको धूप डालना पड़ा। तो निझामुद्दीन ने कहा, मैं तो खड़ा ही नहीं हुआ। यह दुकान से खरीदा हुआ नहीं है, यह भरोसे का धूप है। 'भरोसे रहेवाय, एमां बहु बुद्धिनां डहापण न डहोळाय।' गुरु ने कहा, क्यों कहा? क्या ऐसा कहा जाय? इसमें सयानापन न डाले! स्पष्टता करूं प्लीज़, वह गुरु होना चाहिए।

मुझे कई लोग पूछते हैं, बापू, पहले आप भवाई में थे? खबरदार यदि बोले तो! भवाई में क्यों काम करूं? यह मेरा सहज स्वभाव है। दादा ने मुझे कहा, बेटा, जीवन सरल और तरल होना चाहिए। ठूंठ बनकर बैठना नहीं चाहिए। मुझे कथा कहने की छूट मिल गई है। मैंने आवाज़ सुनी है, तू कहना। ऐसे रहस्यमय शब्द। आखिरी तीन दिन बाकी थे। तब मैंने कहा, कैसे बोला जाय? तब कहा, सरल-तरल बोलना। साहब, ये सब खेल है। मेरे सहज ही में मुझसे खेल करा रहे हैं। यह मेरा नर्तन है। यह मेरा कथ्थक है। क्या कहा, क्यों कहा, इस में ज्यादा सोच मत डालिए। भरोसा रखे। यह भरोसे की धूप है साहब! यह भरोसे का धूपदान है। और अंत में -

'काग' सघळा रोग नासे, कीधुं एम खवायजी;
वैद्य घरनां वाटेलां ते ओसड केम ओळखाय?

वह घुलकर ले। वैद्य ने और कबीर ने पीसे हैं, किसीको पता नहीं! पर उनके सूत्र को जिन्होंने जान लिया, साखी ले ली और बीमारी से जनमोजनम मुक्त कर दिया। उनके भरोसे रह सकते हैं।

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा।
पंचम भजन सो बेद प्रकासा।।

●

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास।।

('गीताजयंती' के अवसर पर जोडियाधाम (गुजरात) में प्रस्तुत प्रसंगोचित वक्तव्य : दिनांक २१-१२-२०१५)

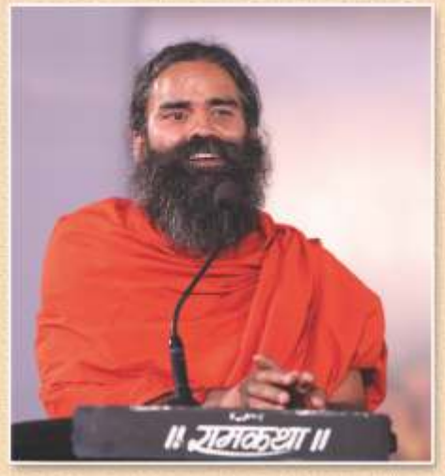

॥ जय सीयाराम ॥